साक्षात्कार का रहस्य

डॉ॰ हरनारायण सक्सेना
जयपुर

साक्षात्कार का रहस्य

डॉ० हरनारायण सक्सेना

https://harnarayan-saxena.com/books%2C-video-and-audio

Digital Edition 2: 13 Oct 2018

विषय-सूची

1. प्राक्कथन 10
2. भूमिका 15
3. उत्थान की श्रेणियां 30
4. पिण्ड (स्थूल) के प्रथम छह खंड 34
   1. गुदा चक्र 34
   2. इंद्रिय चक्र 38
   3. नाभि चक्र 39
   4. हृदय चक्र 40
   5. कण्ठ चक्र 41
   6. आज्ञा चक्र 42
5. ब्रह्मांड और अंड के छह चक्र 49
   7. सहस्त्र दल कमल 49
   8. त्रिकुटी 50
   9. शून्य 54
   10. महाशून्य 54
   11. भंवर गुफा 56
   12. सत लोक सच खंड 56
6. ब्रह्मांड और पारब्रह्म के अंतिम 6 चक्र 58
   13. अलख लोक 58

14 . अगम लोक 58

15 . अकह लोक 58

सोलहवाँ, सत्रहवाँ, और अठारहवाँ चक्र 59

7. चढ़ाव की गति 64

8. उपसंहार 67

9. सन्त कबीर के साधन सम्बन्धी 70

शबद 70

समर्थ सद्गुरु परमसंत

महात्मा श्री रामचन्द्र जी

फतेहगढ़ (उ० प्र०)

जन्म: 2 फरवरी 1873 निर्वाण: 14 अगस्त 1931

परम सन्त डॉ० हरनारायण जी सक्सेना

जयपुर

http://www.harnarayan-saxena.com/home.html

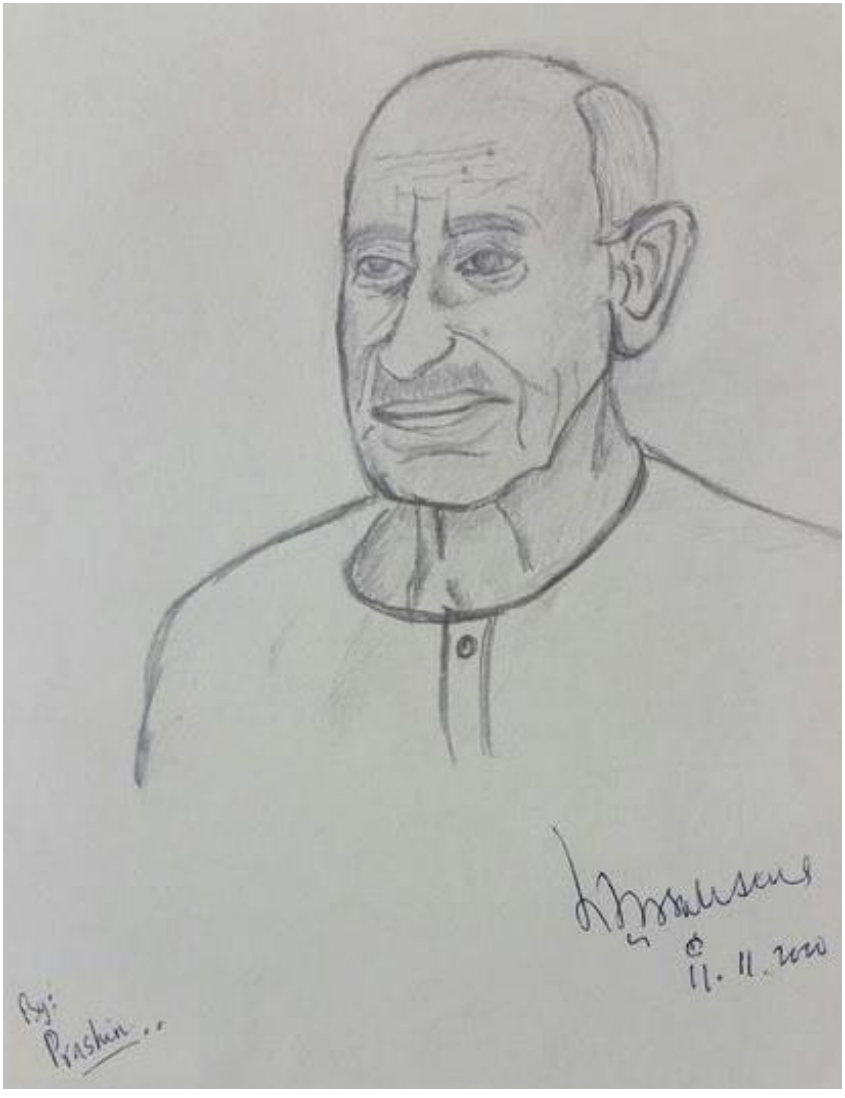

By:
Prashin..
11.11.2020

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक मेरे द्वारा लिखित "द सीक्रेट ऑफ रिअलाइजेशन" का हिंदी अनुवाद है। उक्त पुस्तक अंग्रेजी में होने के कारण उसका उपयोग एक वर्ग विशेष तक ही सीमित था। पुस्तक के विषय की उपयोगिता को देखते हुए अनेक पाठकों, मेरे मित्रों और सत्संगी बंधुओं का लंबे समय से अत्यधिक आग्रह रहा कि हिंदी भाषा भाषी बंधुओं के लाभार्थ का हिंदी संस्करण भी निकलना चाहिए।

एतदर्थ, मैंने सभी के आग्रह को गुरु भगवान की इच्छा मान कर ही इस अनुवाद कार्य को पूर्ण किया। कुछ व्यस्तताओं वश इसे प्रस्तुत करने में विलंब अवश्य हुआ तथापि एक बड़े अभाव की इसके द्वारा पूर्ति अवश्य हुई है।

आध्यात्मिक शब्दों के निहितार्थ को अंग्रेजी भाषा में समझाने की अपेक्षा हिंदी भाषा कहीं अधिक समर्थ एवं सक्षम है। अतएव यह हिंदी संस्करण स्वतः ही अपने में मौलिक बन गया है। शरीर चक्र एवं केंद्रों को समझाने के लिए इसमें कुछ नवीन रेखा चित्र भी दिए गए हैं।

मेरा विश्वास है कि यह हिंदी संस्करण साक्षात्कार का रहस्य गुरु भगवान की अनुकंपा से हिंदी पाठकों, साधकों एवं सभी सत्संगी बंधुओं को यथेष्ट लाभान्वित करेगा एवमस्तु।

जयपुर
14 जनवरी 1994

डॉक्टर हरनारायण सक्सेना

समर्पण

श्रद्धेय समर्थ सद्गुरु परम संत महात्मा श्री रामचंद्र जी
(फतेहगढ़ निवासी) जिन्होनें असीम दया करके
मार्च, 1928 में मुझे अपने संरक्षण में
लेना स्वीकार किया, उन्हीं के
पावन चरण कमलों में सादर
समर्पित

डॉक्टर हरनारायण सक्सेना

प्राक्कथन

मनुष्य को अपने जीवन-काल में कभी तो यह विचार करना ही चाहिए कि उसके जीवन का अंतिम लक्ष्य क्या है ? जितनी जल्दी इस विषय पर विचार हो सके, उतना ही अच्छा है।

भिन्न-भिन्न देशों के लोग संसार के विभिन्न धर्मों का अनुसरण करते हैं और वह (धर्म) प्रत्येक मनुष्य का ध्यान स्वयं के, उसके परिवार, संबंधी, मित्र, पड़ोसी तथा मानव समाज के प्रति उसके कर्तव्यों की ओर आकर्षित करता है। सभी धर्मों में समाज, स्थान और समय की आवश्यकता अनुसार, व्यक्तिगत आरोग्यशास्त्र, आचारशास्त्र समाज और धार्मिक कर्तव्यों के भी अनुपालनीय नियम हैं। सभी धर्मों में परमात्मा की सत्ता और उसके सृष्टि-निर्माण की ओर भी दृढ़ता पूर्वक मानव का ध्यान आकृष्ट किया है और परमात्मा की आराधना के लिए कुछ नियम और मार्ग भी निर्धारित किए हैं।

जो लोग परमात्मा में विश्वास नहीं करते हैं वह भी कम से कम इस अदृश्य शक्ति पर तो विश्वास करते ही हैं जो सारे विश्व को परिचालित करती है और प्रत्येक वस्तु को निश्चित नियमित तथा व्यवस्थित क्रम से रखती है। बहुधा वे इस शक्ति को प्रकृति कहते हैं।

धर्मों के अतिरिक्त संसार के विभिन्न भागों में अनेक संत हुए हैं जिन्होनें सभी को परमात्मा के प्रति प्रेम का उपदेश दिया है। चाहे वह किसी भी धर्म के अनुयायी हों, किसी भी जाती के हो, किसी भी धर्म में आस्था रखते हो अथवा किसी भी राष्ट्रीयता के हों। वे धार्मिक विश्वासों और उद्देश्यों के ऊपर उठे हैं। उन्होंने मानवीय जीवन की विधि तथा आराधना पद्धति पर सीधा प्रभाव डाला है।

सारे संसार के लिए संतों के आविर्भाव का सर्वाधिक श्रेय भारत भूमि को रहा है। कुछ ने तो वास्तव में भारतीय सीमाओं को लांघ कर, विश्व में उत्तर, दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम के अनेक देशों की आध्यात्मिक यात्राएं भी की हैं। अभी कुछ समय

पहले ही उन्होंने विश्व की मानव जाति को इस बात के लिए सचेत किया कि वर्तमान भौतिक विज्ञान पर आधारित यंत्रवत् जीवन से ऊपर उठने तथा जीवन में आध्यात्मिकता का समावेश किए जाने की नितांत आवश्यकता है। उन्होंने शिक्षित संसार के विचारों में क्रांति लाने का सफल प्रयास किया। वे लोग जो भौतिकवादी कृत्रिम जीवन से ऊब चुके थे, उन्होंने यह विचार करना आरंभ कर दिया है कि उनके वर्तमान जीवन के अतिरिक्त एक ऐसा जीवन भी है जिसका अनुसंधान करना और उसे समझना समय की परम आवश्यकता है।

अनेक संतों ने आत्मा के विकास की श्रेणियों का और परमात्मा के प्रेम-मार्ग पर आगे बढ़ने के मार्ग का वर्णन किया है। उन्होंने आत्मा के उत्थान का मार्ग अधिकृत रूप से प्रकट किया है जिनका आरंभ वैदिक काल के उस समय से ही मिलता है, जब वेद और उपनिषदों की रचना हुई थी। तत्पश्चात् समय-समय पर संतों ने प्रकट होकर मानव समाज का ध्यान उन उपदेशों की ओर आकृष्ट करके मनुष्य को भगवत् प्रेम के मार्ग की ओर दिशा निर्देश दिया है।

पिछले दिनों में ही भारत में ऐसे अनेक संत हुए हैं, यथा- कबीर, तुलसी जगजीवन, गरीबदास, पलटू, नानक, दादू, नाभाजी, हरिदास, सूरदास, रैदास, सरमद, शेख अहमद, मुज़द्दद अलफसानी, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, सेठ शिवदयाल सिंह आदि। सिंध में भी ऐसे संत हुए हैं यथा- कलंदर शाह, चांद लाल, शेहबाज़ सरहिंदी, शाह इनायत, दलपत, कुतुब शाह, शाह लतीफ आदि। एशिया के अन्य भागों में भी संत हुए हैं, यथा शम्स तबरेज, मौलाना रूम, हफीज़ आदि। उत्तर भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में ऐसे ही एक विख्यात संत हुए हैं जिनका नाम महात्मा रामचंद्र था।

सभी संतों ने परमात्मा के प्रेम का उपदेश दिया है। जो इस पवित्र मार्ग पर पग रखने के इच्छुक हैं, उन सबके लिए निश्चित आदेश निर्धारित किए हैं। उन्होंने इस वास्तविकता को बहुत स्पष्ट महत्व दिया है कि केवल स्थूल शरीर ही मनुष्य नहीं है। मनुष्य का एक सूक्ष्म शरीर भी है और उसमें एक अति सूक्ष्म शक्ति है जिसे 'आत्मा' कहते हैं। आत्मा परमात्मा का ही अंश है। इस स्थूल शरीर द्वारा मनुष्य को

परमात्मा परमेश्वर, जहां अनंत शांति और परम सुख उपलब्ध है, उस में लीन होने के लिए सीधी पहुंच मिल सकती है।

यह तो कहना नितांत असंभव है कि कौन-कौन से सन्त सर्वोच्च शिखर तक पहुँचे हैं। क्योंकि, संसार में उनके ऊपर के पड़ाव की सीमा का कोई स्थूल मापदंड नहीं है यद्यपि जो लेखा जोखा भी अपने पीछे छोड़ गए हैं, उससे उनके ऊपर की चढ़ाई का अनुमान थोड़ा-बहुत लगाया जा सकता है। प्रत्येक संत ने अपनी ऊपर की चढ़ाई का वर्णन अपने ही शब्दों में और अपने ही ढंग से किया है। उपलब्ध अभिलेखों से और उनके तुलनात्मक अध्ययन से ऐसा जान पड़ता है कि संत कबीर का दिया हुआ वर्णन पूर्ण है और उनकी चढ़ाई सबसे ऊंची है। संतों की शिक्षा के गहन अध्ययन से ऐसा भी प्रकट होता है कि कबीर के बाद के सभी संत, जो उन्हीं के समकक्ष थे, उनके कथन के समान ही अपने-अपने शब्दों में और अपने-अपने ढंग में वैसा ही मिलता-जुलता स्वतंत्र रूप से वर्णन किया है। यह संभव है कि कुछ संतों ने और अधिक प्रयास किया हो और वास्तव में और ऊंची श्रेणियों तक पहुंच ही गए हो परंतु सर्वप्रथम जैसा संत कबीर ने अभिव्यक्त किया है, वैसा ही उनके उत्तरवर्ती संतों ने भी स्वीकार किया है तथा उसे अंगीकार करके करते हुए उसकी पुष्टि भी की है। उनका भी यही कहना है की आगे की श्रेणियाँ अत्यंत गोपनीय है। उन श्रेणियों का वर्णन उपलब्ध शब्दावली से अभिव्यक्त कर सकना संभव नहीं है। अतः इस पुस्तक में जो वर्णन संत कबीर ने दिया है उसी को आधार मान कर और उन्हीं की दी हुई नामावली को लेकर ऊपर की श्रेणियों की व्याख्या का क्रम ग्रहण किया गया है।

इस पुस्तक में विभिन्न महान संतों की उपलब्ध व्याख्याओं का समावेश करते हुए सभी श्रेणियों का यथा संभव व्यापक वर्णन देने का प्रयास किया गया है। वे अपने समय के महान संत हुए हैं। इन संतों ने संपूर्ण मानव जाति को केवल मौखिक उपदेश ही नहीं दिए अपितु व्यवहारिक रूप में अपनी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा अनेकों जिज्ञासुओं को उनके वर्तमान भौतिक जीवन स्तर से ऊंचा उठा कर आध्यात्मिक जीवन के सर्वोच्च स्तर तक पहुंचाया है। साथ ही उन्होंने उन जिज्ञासुओं को अन्य योग्य जिज्ञासुओं की सहायता करके उन्हें उच्च श्रेणियों तक

पहुंचा देने की शक्ति और सामर्थ्य भी प्रदान की है। वे मानव को ऊंची श्रेणियों तक उठाने के लिए विशेष शक्तियों से सम्पन्न थे। वे अपने अधिकारी शिष्यों को भी अपने सामान शक्ति संपन्न बनाने में समर्थ थे जिससे कि वे शिष्य भी अपनी शक्ति से दूसरे लोगों को ऊपर उठाने में सहायता कर सकें।

यही इन संतों की विशेषता रही है। इस भौतिक जगत में ऐसा कोई दूसरा समानांतर उदाहरण उपलब्ध नहीं है।

कहावत है, 'पारस' (पत्थर) लोहे को सोना बना सकता है। वह लोहे को केवल सोना ही बना सकता है, अपने सामान 'पारस' नहीं बना सकता। पर सद्गुरु अपने योग्य शिष्य को सद्गुरु बना सकते हैं। जो अपने गुरु के स्थूल शरीर त्याग देने के पश्चात् अपनी गुरु परंपरा बनाए रखने में सतत समर्थ हो और परंपरा के अनुरूप अन्य जिज्ञासुओं को भी अपनी गुरु परंपरा को अनवरत बनाए रखने के लिए उन्हें सद्गुरु के स्तर का बना सके।

यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि 'सद्गुरु' अपने स्थूल शरीर में रहते हुए अपनी अनुकंपा और कृपा-धारा से योग्य और जिज्ञासु भक्तों को न केवल अपने जीवन काल में ही अपितु स्थूल शरीर को छोड़ने के पश्चात भी निरंतर लाभ पहुँचाते रहते हैं। इस विषय में नए साधकों और अभ्यासियों को एक यह बात विशेष रुप से ध्यान रखनी चाहिए कि उन्हें (नए जिज्ञासु अथवा साधक को) किसी विद्यमान सद्गुरु के पास ही पहुंच करनी चाहिए। उन्हें की कृपा और दया के सहारे आगे बढ़ सकता है। अशरीरी सद्गुरु की कृपा भी उन्हें विद्यमान 'सद्गुरु' के माध्यम से ही मिल सकती है। वस्तुतः विद्यमान 'सद्गुरु' को ही अपना सर्वस्व मानना चाहिए।

मानव समाज का कल्याण करने के लिए इनको 'सद्गुरु' के स्तर के संत सदैव ही विद्यमान रहे हैं और आज भी उपलब्ध हैं। यदि सत्य का अन्वेषण गहन आकुलता के साथ ऐसे 'सद्गुरु' को ढूंढने का प्रयास करें तो 'सद्गुरु' उसे अवश्य उपलब्ध होते हैं और उसकी पूर्ण रुप से सहायता करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक देश के पुरातन संतों के सिद्धांतों और उपदेशों को इस

शताब्दी के संतों द्वारा की गई सैद्धांतिक और व्यावहारिक व्याख्या पर आधारित है। उनके द्वारा की गई व्याख्या का आधार उनका व्यवहारिक ज्ञान और अनुभव है। उच्च स्तर के संतों का ज्ञान मस्तिष्क की कल्पना अथवा तर्क पर ही आधारित नहीं होता। उनका ज्ञान, ध्यान की गहन अवस्था में अपरोक्षानुभूति पर आधारित होता है। भाषा में विद्यमान शब्द ही उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम बनते हैं। कुछ श्रेणियों का स्तर तो इतना ऊंचा है कि भाषा द्वारा उसे अभिव्यक्त कर पाना प्रायः संभव ही है।

लेखक का अपने सभी पाठकों से विनीत अनुरोध है कि इस पुस्तक में उन्हें कहीं भाषा या व्याख्या संबंधित त्रुटि जान पड़े तो कृपया सूचित करने का अनुरोध करें जिससे कि आगामी संस्करण में वांछित सुधार करने का प्रयास किया जा सके।

भूमिका

श्रीमद्भागवत महा पुराण हिंदुओं का एक पुरातन महाकाव्य है । इसके अनुसार सृष्टि के चक्कर में चार युग होते हैं । यह हैं सत युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग । इन चारों युगों को मिलाकर 'चतुर्युगी' कहते हैं । इस पृथ्वी मंडल में चतुर्युगी का एक चक्र 42,20,000 वर्ष का होता है । ऐसे एक हजार चक्र मिलकर 'कल्प' कहलाते हैं । सृष्टिकर्ता भगवान ब्रह्मा का एक दिन एक 'कल्प' के बराबर होता है । भगवान ब्रह्मा की रात्रि भी एक कल्प के बराबर होती है । ऐसा कहते हैं कि ब्रह्मा की रात्रि में सारी सृष्टि अचेत अवस्था में यह कहा जा सकता है कि भगवान ब्रह्मा में लीन रहती है । यह एक कल्प का दिन और एक कल्प की रात्रि को मिलाकर भगवान ब्रह्मा का एक दिन होता है । इस प्रकार के 360 दिन ब्रह्मा के 1 वर्ष में होते हैं । इसी प्रकार के सो वर्षों के बराबर ब्रह्मा की आयु बतलाई गई है ।

परम शक्ति को ही परम परमेश्वर कहते हैं । उसी परम परमेश्वर ने भगवान ब्रह्मा की रचना की है और साथ ही साथ अन्य देवताओं की भी रचना की है जिनको प्रकृति के विभिन्न कार्य सोंपे हुए हैं । हम इन्हें प्रकृति की शक्तियाँ कहते हैं । वे इन शक्तियों के नियंत्रक का कार्य करते हैं- जैसे भगवान विष्णु पालन पोषण करते हैं, भगवान शिव प्रबंध एवं विनाश का नियंत्रण करते हैं । भगवान इंद्र, विद्युत, वर्षा और गर्दन, भगवान वायु आकाश को, भगवान वरुण जल, सागर और महासागर को, भगवान अग्निदेव, ज्वाला को, भगवान सूर्य देव, ताप और प्रकाश का नियंत्रण करते हैं । तो इस प्रकार नियंत्रण करने वाली यह सब शक्तियाँ देवता कही जाती हैं ।

देवताओं का जीवन काल उनके कार्यों के अनुरूप ही निश्चित किया जाता है । यह कार्यकाल एक या दो कल की अवधि तक सीमित होता है । यह आवश्यक नहीं है कि किसी कार्य के लिए पुनः उसी आत्मा की नियुक्ति की जाए । सारी आत्माएँ उसी परमात्मा का अंश हैं । देवी देवता भी उन्हीं आत्माओं में से हैं । आत्माएँ सब अमर होती हैं । प्रकृति के कठोर नियमों से नियंत्रित अपने पूर्व कर्मों के अनुसार नवीनीकरण करने हेतु स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर को परिवर्तित कर देते हैं । स्थूल शरीर के इस परिवर्तन को पृथ्वी पर मृत्यु कहा जाता है ।

मनुष्य की आयु तो सीमित होती है जो सामान्यतया एक सौ वर्ष होती है। देवी देवताओं की आयु इससे कहीं अधिक होती है। उनमें और साधारण आत्माओं में एक तो आयु की भिन्नता होती है और दूसरी शक्ति की भिन्नता होती है, जो उनमें प्रतिपादित होती हैं। उनका अपना-अपना सुनिश्चित कार्यक्षेत्र होता है और उसकी सीमाएँ होती है। अपनी सीमाओं के बाहर भी नहीं जा सकते हैं। जो पुरुष इन देवताओं की आराधना करते हैं, उनको इन देवताओं के कार्य क्षेत्र के समस्त भौतिक लाभ प्राप्त हो जाते हैं। परंतु यह देवता उनकी आत्मा को माया के कठोर बंधन से मुक्त कराने में कोई विशेष सहायता नहीं कर पाते हैं और न उस अनंत पद का मार्गदर्शन करा पाते हैं जो आत्मा का आदि स्थान रहा है तथा जहां परमानंद की एक असीम सुख प्राप्त होता है। मनुष्य का जीवन सीमित है। हम यह भी देखते हैं कि ऐसी दशा समस्त प्राणी मात्र की है। चाहे वह पशु, पक्षी, कीड़े, मकोड़े, सर्प या किसी अन्य प्रकार का प्राणी हो, जो भी परमात्मा को सृष्टि में अस्तित्व रखता हो। ऐसी ही दशा वृक्षों और वनस्पतियों की है। इतिहास के अध्ययन से हम यह भी जानते हैं कि अमुक नगर, नदी या पर्वत, सैकड़ों व हज़ारों वर्ष पहले थे पर अब नहीं है। इस प्रकार उनकी भी आयु सीमित होती है।

प्रकृति माँ प्रत्येक क्षण कार्यरत रहती है। कुछ समय के लिए पदार्थों की रचना होती है। उनका पालन पोषण होता है। उसके पश्चात विनाश हो जाता है। समय का अंतराल ही उनकी आयु कहलाता है। प्रकृति की भौतिक क्रिया सत्ता का तीन भागों में विभाजन किया जा सकता है। यथा -

1. तत्वों से आकार धारण करना।
2. क्रमिक परिवर्तन के साथ संपूर्ण रूप में रहना।
3. तत्व में उनका विभाग होना।

प्रकृति का यह सामान्य गति क्रम है।

परमात्मा की सृष्टि में हम कहते हैं कि हमारी आत्माएँ संस्कारों के रूप में अपने अच्छे और बुरे कर्मों के साथ प्रत्येक जन्म व मृत्यु के चक्कर में जाती हैं। पुराणों के अनुसार पुरानी की दुनिया चौरासी लाख प्रकार की होती हैं। आत्माएँ

अपने संस्कारों के अनुसार उनमें आती हैं। इन योनियों में वे अपने संस्कारों के अनुरूप सुख और दुख का भोग करके एक से दूसरी में जाती रहती हैं, जब तक कि उनका चक्र पूरा नहीं हो जाता, यह क्रम चलता रहता है। मनुष्येतर निम्न योनियों में रहने के संस्कार जब पूरे हो जाते हैं, तभी उनको मनुष्य योनि प्राप्त करने का अवसर आता है। मनुष्य योनि पुनः प्राप्त होने के समय की कोई निश्चित अवधि नहीं है। कितना भी समय लग सकता है। यहां तक कि सहस्त्रों वर्ष भी अथवा इससे भी अधिक हो सकता है।

पशुओं, पक्षियों व कीड़ों आदि के जीवन का दुःख और विवशता का अनुमान हम भली प्रकार लगा सकते हैं। यह अत्यंत दुख दाई है। यह एक दंड के रूप में दिया जाता है जो आत्मा को कभी सुखकर नहीं हो सकता, पर इस को सहन करना पड़ता है। यह प्रकृति का नियम है जो दृढ़ तथा अटल है, जिसका न उल्लंघन किया जा सकता है और न जिसे रोका जा सकता है।

यदि तुम्हें कभी किसी प्राणी को शरीर त्यागते हुए देखने का अवसर मिले, जब आत्मा शरीर को छोड़ रही होती है, तो तुम्हें दृढ़ विश्वास हो जाएगा की प्राणी के जीवन की सबसे अधिक दुख दाई घड़ी यही है। आत्मा शरीर को छोड़ना नहीं चाहती। जीवित रहने के लिए भरसक प्रयत्न करती है। पर अंत में उसके सारे प्रयास विफल हो जाते हैं और अंततः है उसे शरीर त्यागना ही पड़ता है। यही प्रकृति का नियम है। इस से कोई बच नहीं पाता।

मृत्यु के समय मनुष्य की भी यही दशा होती है। संसार में उपलब्ध सब प्रकार की सहायता प्राप्त करने का प्रयास करता है पर अंत में उसके सारे प्रयास और उस समय की सारी उपलब्ध सहायता उसको जीवित रखने में पर्याप्त नहीं होती और वह अपने जीवन की, संसार में जो कुछ उसके पास है या प्राप्त कर सकता है, उसकी उत्कंठा लिए और उन्हीं की लालसा में मृत्यु को प्राप्त होता है। आत्मा के शरीर के छोड़ते समय की पीड़ा असहनीय होती है। पर इसको सहन करना ही पड़ता है क्योंकि, प्रकृति के नियम से कभी छुटकारा नहीं मिल सकता। एक बुद्धिमान पुरुष यह सोच कर कि किसी न किसी दिन वह घटना उसके साथ भी

घटित होने वाली है वह भय से कांप जाता है।

अब हम इसके दूसरे पक्ष को देखें जिसे जन्म कहते हैं। माताएँ गर्भाधान का भार पूरे नौ माह सहन करती हैं। इसमें कभी-कभी वृद्धि भी हो जाती है। अंत में प्रसव के समय भी दारुण पीड़ा को सहन करती हैं। परंतु बाद में जब वे देखती हैं कि उन्हें बच्चा प्राप्त हुआ है तो वह मन में संतोष कर लेती हैं और धीरे-धीरे समय बीतने के साथ अपनी पीड़ा को भूल जाती हैं। अब बच्चे के संबंध में भी विचार करें। जब वह मां के गर्भ में होता है तो निस्सहाय होता है। वह चारों ओर से बंद होता है। उसकी टाँगें ऊपर की ओर से नीचे को की ओर होता है। ने तो हाथ पैर चलाने का स्थान होता है और न श्वास लेने के लिए शुद्ध वायु ही मिलती है। यदि मां गर्म या कठोर भोजन करती है तो इससे गर्भ में बच्चे को भी कष्ट होता है। बच्चे की स्थिति पूरे नौ माह रहती है। जन्म लेने के पश्चात भी उसे भोजन, स्वच्छता तथा अन्य आवश्यकताओं के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है, जब तक की वह स्वयं समर्थ नहीं हो जाता। बाद में वह सारे काम स्वयं करने लगता है और अपनी आवश्यकताओं को स्वयं की पूरी करने लगता है। जन्म के समय बच्चे की पीड़ा भी इतनी कष्टमय होती है कि यदि हम अपने को उन परिस्थितियों में रखकर विचार करें तो भय से कम कंपनी आ जाती है।

इस संसार में अनंत दुखों और कष्टों को छोड़कर यदि पीड़ा, कष्ट और निस्सहायता के इन्हीं दो उदाहरणों पर विचार करें तो एक विद्वान पुरुष को सचेत करने के लिए और यह समझने के लिए पर्याप्त है कि जिस कष्ट की पुनरावृत्ति उसके लिए भी निश्चित है और अनिवार्य है, उससे छुटकारा पाना कितना आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

जब कभी हम किसी अंत्येष्टीय-क्रिया में जाते हैं तो सामान्यतः यही विचार आते हैं कि एक ना एक दिन हम भी मरेंगे। इसी प्रकार ले जाए जाएंगे, तथा इसी प्रकार दाह क्रिया होगी। मृतक शरीर के पास जितनी देर हम बैठते हैं हमें अपने भविष्य के बारे में ही विचार आते रहते हैं। परंतु, जब हम दाह क्रिया के पश्चात वापस आते हैं, तब इस आवश्यक विषय को बिल्कुल भूल जाते हैं और अपने

दैनिक कार्यक्रम में व्यस्त हो जाते हैं। यहां तक की मृत्यु का विचार करना भी हमको पीड़ादायक और कष्टदायक लगने लगता है। हम अपने मन में इन विचारों को कभी भी स्थान देने को तैयार नहीं होते।

इस प्रकार हमारे लिए अपने भविष्य के बारे में विचार करने के अनेक अवसर आते हैं। पर हम मृत्यु से डरते हैं। यहां तक कि इसका तनिक भी विचार आने से हम कांपने लगते हैं। उसका यह तात्पर्य नहीं है कि जो होना निश्चित है, उससे हम बच जाएंगे। संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि मनुष्य, जो प्रतिदिन संसार से लोगों को जाते हुए देखता है और यह भी जानता है कि उसका जाना भी निश्चित है, तो भी वह चिंता नहीं करता है और अपने को अमर समझता है। यह आपके और हमारे सब के लिए एक वास्तविक तथ्य है। कोई भी इसका अपवाद नहीं है।

अपने सामान्य जीवन काल में मनुष्य निरंतर हर्ष और शोक, लाभ और हानि व प्रसन्नता और अवसाद के चक्करों में ग्रसित रहता है। यह भी प्रत्येक मनुष्य के साथ व्यवहारिक है। उसके माँगें और आवश्यकताएँ सदा बढ़ती रहती हैं। इनमें से कुछ तो पूरी हो जाती हैं और कुछ अधूरी रह जाती हैं। तो भी अन्य नई आवश्यकताओं का क्रम पुनः आरंभ हो जाता है। इस प्रकार इन इच्छाओं, आवश्यकताओं का चक्र जीवनपर्यंत चलता रहता है। इस प्रकार अपूर्ण इच्छाओं की संख्या पूर्ण इच्छाओं से कहीं अधिक होती है। असंतोष और कष्ट के अवसर, संतोष और प्रसन्नता की तुलना में कहीं अधिक होते हैं। तब ऐसा मनुष्य तो बड़ी कठिनाई से मिलेगा जिसकी किसी भी वस्तु के लिए कोई इच्छा नहीं है। जिस की सारी इच्छाएं तृप्त हो चुकी हैं। भारत में एक महान संत कवि ने इस स्थिति का बड़े ही सुंदर शब्दों में वर्णन किया है –

चाह गई चिंता मिटी, मनुआ बे परवाह ।
जिनको कछु न चाहिए, ते शाहन के शाह । ।

स्वाभाविक रूप से प्रश्न यह उठता है कि क्या कोई ऐसा मार्ग है जिससे कष्टों और चिंताओं के चक्रों की निरंतर एवं अवश्यंभावी पुनरावृत्ति से मुक्ति पाई जा

सके। इसका उत्तर है की हाँ मुक्ति पाई जा सकती है।

संसार में ऐसे अध्यापक हैं जो भाषा, कला विज्ञान आदि पढ़ाते हैं और भांति-भांति के व्यवसाय व अन्य छोटे बड़े कार्यों, व्यवसायों के लिए प्रशिक्षण देते हैं। इसी प्रकार आत्मा के उत्थान एवं संसार में जन्म मृत्यु के कष्टों के जो मूल कारण है, उनसे मुक्ति दिलाने वाले गुरु भी हैं। सांसारिक और भौतिक विषयों के गुरु तो विद्यालय, महाविद्यालय व विश्वविद्यालय में सुविधा से उपलब्ध हो जाते हैं। पर आत्मा का उत्थान करने वाले सरलता से उपलब्ध नहीं होते। यह विषय ही ऐसा है। इसमें सर्व साधारण की रुचि नाम मात्र की होती है। यदि आप वास्तव में इस विषय के गुरु को प्राप्त करने के इच्छुक हैं तो आपको उनकी खोज बड़ी लगन व दृढ़ता से करनी होगी। ऐसे संत विद्यमान हैं जो आध्यात्म के उच्चतम शिखर से नीचे उतर कर केवल आत्माओं के उत्थान हेतु आते हैं, जो इस माया के अंधकार में वांछित मार्ग के लिए भटकती रहती है। इन संतों को इस कार्य को संपन्न कराने के लिए ही नियुक्त किया जाता है। उनका सांसारिक दैनिक जीवन तो हमारे और आपके भांति ही होता है, पर मनुष्य को सांसारिक बंधनों से मुक्त कराने के पवित्र कार्य को संपन्न करने की शक्ति विद्यमान होती है। उनमें इतनी शक्ति होती है कि वे मनुष्यों में सत्य की खोज की चेतना जागृत कर सकें। साथ ही उन्हें सत्य अर्थात् समस्त सृष्टि के रचयिता के बोध करने में सहायक हो सकें। संतों ने ऐसे ही विशिष्ट गुरुओं को सद्गुरु का नाम दिया है।

वस्तुतः ऐसे सच्चे और वास्तविक सद्गुरु को प्राप्त करना अत्यंत दुष्कर है। कारण यह है कि इस विद्या के क्षेत्र में ऐसे अनेक पाखंडी और कपटी व्यक्ति घुस गए हैं जो अपने को सद्गुरु कह कर मनुष्यों को भ्रम में डालते रहते हैं। सामान्य रूप से एक साधारण व्यक्ति को सच्चे और बनावटी संत में भेद करना असंभव सा ही है। मनुष्य में उनकी आध्यात्मिक योग्यता का पता लगाने का कोई मापदंड नहीं है और वह इन पाखंडियों से वह उनके वाचक ज्ञान, जो उन्होंने संतों की पुस्तकों व साहित्य से एकत्रित किया होता है, उससे सहज में व्यक्ति प्रभावित होकर धोखा खा सकता है। उन्हें पुस्तकों के सैद्धांतिक ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ भी जानकारी नहीं होती और वह चेतना के उच्च स्तर के चढ़ाव के वास्तविक ज्ञान से अनभिज्ञ

होते हैं। हमको ऐसे बनावटी गुरु और उनके दलालों से सतर्क रहना चाहिए जो सीधे और सज्जन पुरुषों को उनके जाल में फँसाने में सहायता करते हैं तथा उन की धन संपत्ति को भी हड़पने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार के ढोंगी गुरु किसी को भी परमात्मा से प्रेम के पवित्र मार्ग का मार्गदर्शन कभी भी नहीं कर सकते हैं क्योंकि उन्हें स्वयं भी इसका ज्ञान नहीं होता है। वे अपने सांसारिक लाभ के लिए ढोंग रचते रहते हैं।

हम कुछ विस्तार से सद्गुरु के गुणों की चर्चा कर सकते हैं जिससे कि हमारे पाठकों को सच्चे सद्गुरु और पाखंडों को पहचानने में सहायता मिल सके। सर्वप्रथम तो आवश्यकता इस बात की है कि आपकी खोज सच्ची और निष्कपट होनी चाहिए और जिस ध्येय के लिए आपको मार्गदर्शक की आवश्यकता है, उस परमात्मा के प्रेम मार्ग पर चलने का दृढ़ संकल्प होना चाहिए। आपको परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि आपको सच्चे सद्गुरु प्राप्त हों। आपका उस परमात्मा में दृढ़ विश्वास हो और उस परमात्मा की दया कृपा निःसंदेह प्राप्त करने का संकल्प हो। यदि आप इस प्रकार प्रयास करें तो सच्चे सद्गुरु के अविलंब दर्शन होंगे।

सद्गुरु के लक्षण

1. सच्चे संत सदा दैविक पवित्र प्रकाश की धारा और परमात्मा के प्रेम की वर्षा करते रहते हैं। जो व्यक्ति ऐसे संतों के निकट जाते हैं और संग रहते हैं उन्हें परम शांति मिलती है। आपको भी जब उनका सामीप्य प्राप्त हो तो शांति व आनंद का अनुभव अवश्य होगा।

2. उन का सत्संग धैर्य और शांति के अतिरिक्त समस्त सांसारिक वस्तुओं से धीरे-धीरे मानसिक वैराग्य जागृत करता है जिससे मस्तिष्क का संतुलन स्थिर हो जाता है। आप गृहस्वामी के कर्तव्यों का पालन करते हुए, आपका उनसे मानसिक अलगाव रहने लगेगा और इस प्रकार आप के कर्तव्यों का पालन अनुराग रहित और निष्काम भाव से होगा।

3. समय-समय पर सद्गुरु आध्यात्मिक उन्नति एवं चढ़ाई हेतु आवश्यक

सहायता प्रदान करते हैं। साथ ही मानसिक सत्संग द्वारा निरंतर मार्गदर्शन करते रहते हैं।

4. आप देखेंगे कि उनका व्यवहार सबके साथ, चाहे वह परिवार का सदस्य हो, साथी हो, संबंधी हो अथवा नवागंतुक हो, नम्र व विनीत होगा।

5. वे सदैव यहीं शिक्षा एवं परामर्श देते हैं कि आपको शुद्ध एवं सादा जीवन व्यतीत करना चाहिए और सभी प्रकार के आडंबर, प्रदर्शन एवं नीति चातुर्य से दूर रहें। मादक वस्तुओं, जुआ खेलने और व्यभिचार आदि से दूर रहना चाहिए। इन से अपने को बचाएं।

6. वे व्यर्थ की बातों में व वाद-विवाद में न उलझने की सलाह देते हैं और यह भी शिक्षा देते हैं कि उपलब्ध समय को परमात्मा एवं गुरु के स्मरण में उपयोग करें।

7. वे परमात्मा के प्रेम की और ऊपर चढ़ने के आंतरिक मार्ग की ओर आगे बढ़ने की शिक्षा देते हैं। वे बाह्य पूजा में अपने को लिप्त करने की सम्मति नहीं देते। इस प्रकार के कार्य आपकी आत्मा को ऊपर स्थूल से सूक्ष्म में पहुंचने के लिए विलंब करते हैं एवं बाधा डालते हैं क्योंकि यह सब प्रकार से स्थूल ही होते हैं।

8. उन्हें आपकी सेवाएँ, धन अथवा किसी प्रकार के प्रतिफल की आवश्यकता नहीं होती। उनकी समस्त आवश्यकताएं बहुत अल्प और सीमित होती हैं। उनकी आवश्यकताएँ प्रकृति माता द्वारा स्वतः पूर्ण होती रहती हैं।

9. वे आप को सांसारिक कर्तव्यों व अपने माता, पिता, परिवार, समाज एवं सरकार के प्रति उत्तरदायित्व की अवहेलना का परामर्श कदापि नहीं देंगे। वे संसार से शारीरिक एवं स्थूल अलगाव एवं सन्यास के प्रति कभी प्रोत्साहित नहीं करेंगे।

संत कहते हैं कि मनुष्य सृष्टि कर्ता की सबसे अनुपम कृति है और शरीर में रहते हुए वह अध्यात्म के उच्चतम स्तर तक पहुंच सकता है तथा परमपिता परमात्मा में लीन हो सकता है। मनुष्य शरीर समस्त विश्व की सृष्टि का एक छोटा रूप है और जो कुछ भी सृष्टि में उपलब्ध है, वे सभी वस्तुएँ इसमें विद्यमान है। जब मनुष्य शरीर का अंत हो जाता है तो अपने अच्छे और बुरे कर्मों के अनुसार उसकी आत्मा को नीचे की योनियों में जैसे पशु, पक्षी, सर्प आदी में जाना पड़ता है। नीचे की योनियों में वर्षों तक जन्म मृत्यु के कष्ट और पीड़ा सहन करने के पश्चात ही उसको पुनः मनुष्य योनि मिल पाती है। मनुष्य शरीर में रहते हुए जब वह आध्यात्म का यह अवसर चूक जाता है तो उसको पुनः मनुष्य योनि प्राप्त होना दुर्लभ है। उसे पुनः मनुष्य योनि प्राप्त करने में संभव है कि सहस्त्रों वर्ष या उससे भी अधिक समय लग जाए। इसलिए उसे यह परम आवश्यक है कि वह सद्गुरु की खोज करे और उसके ही निर्देशन में दृढ़ निष्ठा और संकल्प से सब कार्य करें जिससे की जन्म मृत्यु के दारुण कष्ट से उसका निवारण हो सके। यदि वह मनुष्य शरीर में रहते हुए इस अवसर को खो देता है तो इन कष्टों की पुनरावृत्ति अनिवार्य है।

संतों का सिद्धांत है कि आत्मा परमात्मा का ही अंश है। अपने अच्छे-बुरे कर्मों के कारण जो माया का स्थूल व सूक्ष्म शरीर पर आवरण आ जाता है। उससे यह बहुत निर्बल हो जाती है। माया मनुष्यों को इन आवरणों से छुटकारा नहीं पाने देती। फल स्वरूप वह परमात्मा में लीन नहीं हो पाती। इस क्रम के द्वन्द्व काल में यह अपनी असीम शक्ति खो बैठती है। यह केवल सद्गुरु ही हैं जो आत्मा को माया के आवरणों से छुटकारा दिला सकते हैं। वे उस शक्ति को जो माया के आवरणों से दबी हुई होती है, वापस दिला देते हैं। वे आत्मा को परमात्मा तक पहुंचाने के मार्ग को भी प्रशस्त करते हैं और अंत में आत्मा को परमात्मा तक पहुंचा देते हैं, जहाँ अनन्त शांति और स्थिरता विद्यमान है।

यहां पर यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि आर्यों के वेद भी देवी देवताओं की आराधना करने का परामर्श नहीं देते हैं और इन विभिन्न परमात्मा की शक्तियों की वही परिभाषा व नाम देते हैं जो भारत के संतों ने दिए हैं। देवताओं की मूर्ति पूजा का विकास तो बहुत बाद का है जो समाज के प्रभावशाली वर्ग ने अपने

वर्ग के लाभ के लिए आरंभ किया था। इसका इतना अधिक प्रचार हुआ कि यह धारणा केवल भारत में ही नहीं वरन् संसार के अन्य सभी देशों में दूर-दूर तक फैल गई। देवी देवताओं को मूर्त रूप देकर संसार के विभिन्न देशों में तत्स्थानीय प्रचलित आचार के अनुरूप उनका पूजन आरंभ हुआ। ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म और बाद में आर्य समाज ने इसको अत्यंत तीक्ष्ण धक्का पहुंचाया। जब एक ईश्वर के सिद्धांत का प्रचार किया गया तो उसका सब ने स्वागत किया।

इन सब सांसारिक धर्मों के विकास के पहले से ही संत लोग इस सिद्धांत को अपनाते रहे हैं। ऐसा ही भारत में भी था जो संसार में इस विषय पर सबसे प्रमुख और अग्रणी रहा है।

इस पुस्तक में जिन प्रमुख देवताओं का प्रधान रूप से परिचय दिया गया है, वे हैं- भगवान विष्णु, ब्रह्मा, शिव, गणेश आदी। जैसा के ऊपर उल्लेख किया गया है। ये सब सृष्टिकर्ता परमात्मा की विभिन्न शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। पुरातन आचार के अनुसार भारत के संतों ने भी इन्हें ग्रहण किया। उनके कर्तव्य व शक्तियों के लक्षण बताएं और विशेष व्याख्या की। पाठकों को इसका अर्थ कुछ और नहीं लगाना चाहिए।

आज के विद्वान इन संतों के इस दृष्टिकोण को मानने के लिए तैयार नहीं है कि सद्गुरु में निर्विवाद विश्वास होना आवश्यक है। वे ऐसी कोई बात मानने को तैयार नहीं है कि जिनको वे समझने में असमर्थ हैं या जिसको तर्क द्वारा सिद्ध न किया जा सके। वह अन्धानुसरण करने वालों को स्वीकार नहीं करते, तो भी यह तो मानते ही हैं कि एक मनुष्य जो प्रशिक्षित अभियंता है, वह वैद्य का कार्य करने में सक्षम नहीं हो सकता और न वैद्य किसी अभियंता का। आत्मा के नीचे की सामान्य स्थिति से सुख और अति सूक्ष्म दिशा में चेतना के ऊपर के चढ़ाव का विषय भी तकनीकी है और इसकी तकनीक को भी सीखना होता है। हर प्रकार के प्रशिक्षण में दूसरों के, जो उस विषय में उनसे आगे हैं और उनके गुरु हैं, उनके अनुभव के परिणामों को तो मानना ही होता है। ऐसी ही स्थिति यहां पर भी है। जब हमारा ज्ञान छोटी और सूक्ष्म बातों को जो इस विषय की विशेष तकनीक है, समझने के लिए पर्याप्त नहीं है,

तब हम को अपने गुरु सद्गुरु पर ही पूर्णतया निर्भर रहना पड़ेगा। अतः जिस प्रकार हम सांसारिक विद्या सीखने में विश्वास करते हैं और स्वीकार करते हैं, उसी प्रकार यहां भी करना होगा। इसमें कोई नवीनता या भिन्नता नहीं है।

कहने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि अपने को संतुष्ट किए बिना कि अमुक व्यक्ति की वास्तव में आपको आवश्यकता है और वह आपको सच्चा मार्ग दर्शन कराने के योग्य है, उसे गुरु स्वीकार कर लें। हमने पिछले प्रष्ठों में विस्तृत चर्चा की है कि गुरु की वास्तविकता को जानने के लिए पर्याप्त समय व शक्ति की आवश्यकता है जिससे कि बाद में ऐसा न लगे कि हमें अयोग्य पथ प्रदर्शक मिल गया है। गुरु के गुणों व लक्षणों को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है जो हमारे पाठकों को और सत्य की खोज करने वालों को मार्गदर्शन में सहायक हो सके।

गुरु द्वारा शिष्य को भगवान का नाम मंत्र जाप के लिए देने की पुरानी प्रथा विवादग्रस्त है। यह मंत्र शिष्य को जीवन पर्यन्त जपना होता है। कुछ संतों द्वारा यह प्रथा आज भी प्रचलित है। बनावटी गुरु इस प्रकार का मंत्र नाम शिष्यों को बहुदा दिया करते हैं और उसके पश्चात शिष्य और गुरु एक दूसरे को भूल जाते हैं। पर ऐसे संत भी हैं जो इस तरह का नाम शिष्य को नहीं देते हैं। सूफी लोगों का कहना है कि वह परमात्मा के नाम को शिष्य के हृदय की धड़कन से मिला देते हैं। हृदय की धड़कन जो मनुष्य में जीवन पर्यंत निरंतर चलती रहती है। मनुष्य के जाने में या अनजाने में, दिन के चौबीसों घण्टों में प्रतिक्षण उस परमात्मा का नाम जपती रहती है। विभिन्न शिष्यों के लिए गुरु की इच्छानुसार यह परमात्मा का नाम ॐ, राम, अल्लाह, गॉड और कृष्ण आदि कोई भी हो सकता है। शिष्य जब उसी मंत्र से अपने हृदय की धड़कन पर, यह मान कर ध्यान लगाता है कि उसके गुरु उसके सामने उपस्थित हैं, तो उसे अपने गुरु से सीधी सहायता मिलती है। चाहे गुरु अपने स्थूल शरीर से उसके सामने उपस्थित हों या न हों। शिष्य माया के आवरणों को त्याग करना आरंभ कर देता है और सूक्ष्म स्थिति में प्रवेश कर अपनी आत्मा का शुद्धिकरण करना आरंभ कर देता है।

सूफियों ने अपने शोध कार्य में और अधिक प्रकृति की है और मनुष्य शरीर

के वक्ष स्थल पर चार अन्य केंद्रों की खोज की है, जहां ध्यान केंद्रित किया जा सकता है। कण्ठ और हृदय में उनका स्थान है। उनके नाम इस प्रकार हैं-

	नाम	स्थान
1.	क़ल्ब	हृदय (बाई और)
2.	रूह	दाहिनी ओर हृदय के सामने
3.	सर	बाईं ओर और हृदय के चार पांच इंच ऊपर
4.	ख़फ़ी	रूह बिंदु से चार पांच इंच ऊपर
5.	अक्फ़ा	इन चारों बिन्दुओं के ऊपर और कण्ठ के नीचे
6.	अक्फ़ा अक्फ़ा	कण्ठ

प्रस्तुत रेखा चित्र में इसे भली-भांति स्पष्ट किया गया है।

सूफी संतों द्वारा ख़ोजे गए वक्षस्थल पर अन्य चार केंद्र -

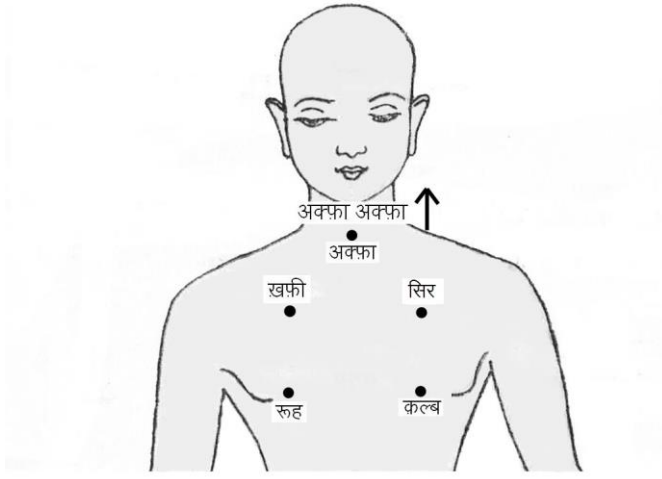

संदर्भ- “कमाले इंसानी” लेखक- महात्मा रामचंद्र जी, फतेहगढ़

उनकी अध्यात्म पद्धति के अनुसार ये सभी केंद्र हृदय की शुद्धता के साथ

शांति प्रदान करते हैं। इन सभी केंद्रों पर भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न प्रभाव वाली हृदय की धड़कन सुनाई देती है। परंतु इन सभी स्थितियों में सद्गुरु (सूफी शब्दावली मैं मुरशिद) की सहायता परम आवश्यक है। उनकी अनुपस्थिति में कोई भी प्रगति संभव नहीं है।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सूफी चढ़ाव के केंद्रों को पिण्ड, अंड और ब्रह्मांड को मान्यता नहीं देते हैं। उनकी भाषा पारसी होने के कारण उन्होंने नाम भी फारसी में दिए हैं, जैसा की नीचे वर्णन में दिया गया है। महात्मा रामचंद्र जी ने अपनी पुस्तक "वेदांत सार" मैं नीचे के पांच चक्रों का जो गुदा, इंद्रिय, नाभि, हृदय और कण्ठ में स्थित हैं, वर्णन दिया है। महात्मा डॉ॰ कृष्ण स्वरूप जी ने आगे के सात चक्र अर्थात् आज्ञा, सहस्त्र दल कमल, त्रिकुटी, शून्य ,महाशून्य, भंवर गुफा और सचखंड का वर्णन अपनी पुस्तक 'सप्त दर्शन' (फ़क़ीरों की सात मंज़िलें) मैं दिया है।

सूफियों ने चक्रों के जो फारसी नाम दिए हैं, वह इस प्रकार हैं-

1. पिण्ड के नीचे के पांच चक्रों को 'लतायफ़-ए-सत्ता' के नाम से जाना जाता है। इनमें पहले तीन को 'आलम नासूत' और अगले दो को 'आलम मल्कूत' कहते हैं।
2. अगला छठा अर्थात् आज्ञा चक्र को 'नुक्त-ए-सुवेदा' कहते हैं।
3. अगला सातवाँ अर्थात् सहस्त्र दल कमल को 'आलम जबरूत' कहते हैं।
4. आठवाँ अर्थात् त्रिकुटी को 'मुस्लसी' कहते हैं।
5. नवें और दशवें, शून्य और महाशून्य को 'खला' और 'आलम-ए-लाहूत' कहते हैं।
6. ग्यारहवें को अर्थात् भंवर गुफा को 'मुकाम-ए-अलाहू' कहते हैं।
7. बारहवें को अर्थात् सचखण्ड को 'मुकाम-ए-हक' कहते हैं।

इस यथार्थता के उपरांत कि भारत के संतों और धार्मिक नेताओं का ढेरों साहित्य, जो पुराने विश्वविद्यालयों और पुस्तकालयों में उपलब्ध था, जिनमें उनके व

अन्य विद्वानों की खोज व शोध के परिणाम थे, जिसको मुसलमान काल के हठधर्मियों ने विशेषकर कट्टरपंथी मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब ने जला दिया था। अध्यात्मिक की मूल जड़ें भारत में दृढ़ और सुरक्षित रहीं। चारों वेद, उपनिषद, महाभारत, वाल्मीकि और तुलसी कृत रामायण, आज भी उपलब्ध है। भगवान कृष्ण की श्रीमद्भगवद् गीता का मौलिक पाठ हमारे पास उपलब्ध है। ऐसा कहा जाता है इस विषय के समस्त ज्ञान का इसमें समावेश है। इसका अनुवाद संसार की अनेक भाषाओं में किया गया है और सभी देशों में इस को मान सम्मान दिया जाता है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को अपने में संपूर्ण समर्पण का उपदेश दिया था। अर्जुन ने उनको अपना गुरु स्वीकार किया और अपने को उनके आदेशानुसार उनके प्रति पूर्ण समर्पण कर दिया। भगवान कृष्ण के शब्दों में-

सर्व धर्मान परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज ।
अहम त्वां सर्व पापेभ्यो, मोक्षयिष्यामी मा शुचः ।।

अर्थात् अपने सारे विश्वासों को त्याग दो और मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें समस्त अपराधों के बोझ से छुटकारा दिला दूंगा। अपने मन में इसके प्रति कोई भी संदेश व शंका नहीं रखना।

गुरु व सद्गुरु की परिभाषा संत कवि तुलसीदास जी ने इस प्रकार वर्णन की है-

वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम् ।
यमाश्रितोहि वक्रोपि चंद्रः सर्वत्र वन्द्यते ।।

अर्थात् में गुरु को प्रणाम करता हूँ, जो समस्त ज्ञान के अनंत भंडार हैं और जो उन महान भगवान शिव का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिनके संरक्षण में वक्र (टेढ़ा-क्रूर) चंद्र को भी पूजा जाता है। आगे-

बन्दउं गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि ।
महामोह तम पुंज, जासु वचन रविकर निकर ।।

मैं गुरु के कमल पदों का नमन करता हूं, जो कृपा के सागर हैं, जो मनुष्य रूप में भगवान का स्वरूप हैं। जिनके शब्द मन के अंधकार को, जो मोह और सांसारिक बंधनों से उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार नाश करते हैं, जैसे सूर्य की किरणें अंधकार का लोक कर देती हैं।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि गुरु के प्रति समर्पण की प्रथा नई नहीं है और न संतों का स्तवन ही कोई नई बात है। निःसंदेह समर्पण करने के पहले अपने को पूर्णतया संतुष्ट कर लेना चाहिए और इतना आश्वस्त हो जाना चाहिए कि वह सच्चे गुरु को समर्पण कर रहा है। ऐसा ना करने से यह संभव है कि वह अयोग्य हाथों में फँस जाए और ऊपर उठने के स्थान पर और नीचे की ओर गिर जाए।

प्रथम अध्याय

उत्थान की श्रेणियां

संतों ने मानव जीवन की श्रेणियों का वर्गीकरण एवं उत्थान मार्ग को तीन प्रधान भागों में विभाजित किया है-

1. पिण्ड - स्थूल
2. अंड - सूक्ष्म
3. ब्रह्मांड - कारण

इन तीनों स्थितियों में से प्रत्येक को 6 विभागों में पुनः विभाजित किया गया है। इस प्रकार सब मिलाकर 18 श्रेणियाँ हैं। इन सब के मानचित्र अगले पृष्ठ पर दर्शाए गए हैं। उनका नामकरण भारतीय संतों, विशेषकर संत कबीर के दर्शन शास्त्र के आधार पर किया गया है।

आत्मा का अवतरण मानव शरीर में प्रवेश करते समय सर्वप्रथम मस्तिष्क के उच्च मध्य भाग में हुआ और वहां से मस्तिष्क के अग्र भाग में। उसके पश्चात कण्ठ तथा मेरुदंड में होती हुई, शरीर के निचले भाग में प्रवेश करती है। इस उतार के क्रम में आत्मा अनेक ठहराव केंद्र स्थापित कर लेती है जिनके द्वारा उसका प्रवेश शरीर के संपूर्ण भागों में फैल जाता है। संतों ने इन ठहराव के केंद्रों को चक्र व कमल के नाम से संबोधित किया है।

अठारह श्रेणियों का मानचित्र

परमात्मा परमेश्वर – सर्व व्यापक, सम्पूर्ण ज्ञान, सम्पूर्ण सुख, उदार, दयालु एवँ कृपालु।

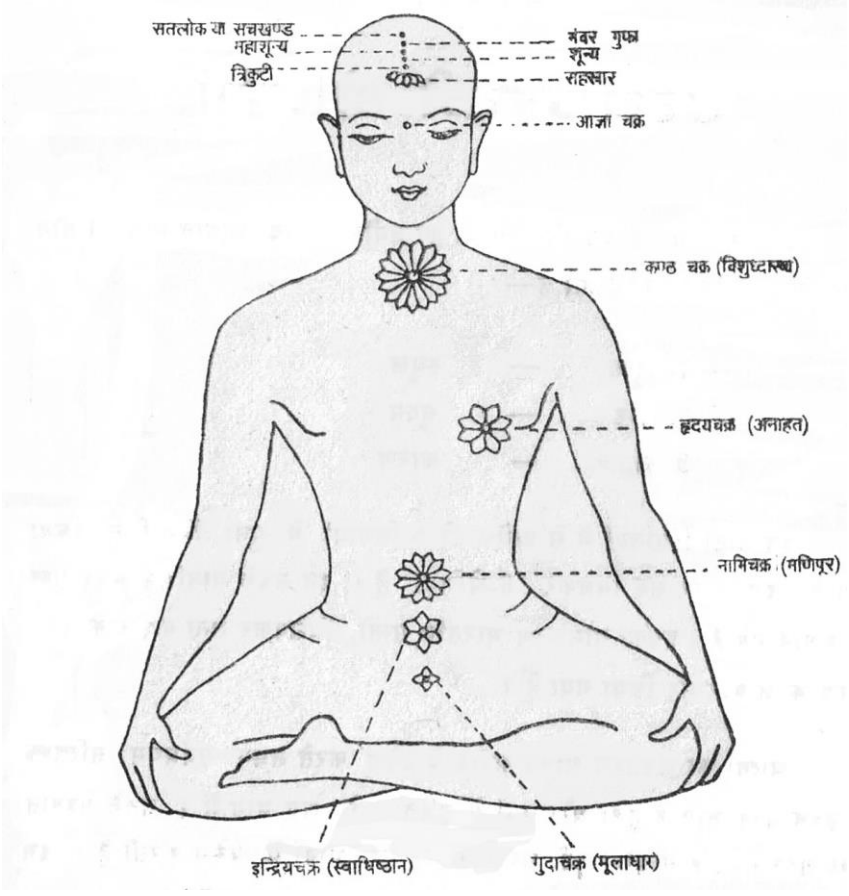

1.	कारण लोक के छह चक्र ब्रम्हांड	1.	संतों ने इन तीनों स्थितियों	18
		2.	को गुप्त रखा है।	17
		3.	यह अवर्णनीय है	16
		4.	अनामी	15
		5.	अगम	14
		6.	अलख	13
2.	सूक्ष्म लोक के छह चक्र अण्ड	7.	सचखंड	12
		8.	भंवर गुफा	11
		9.	महाशून्य	10
		10.	शून्य	9
		11.	त्रिकुटी	8
		12.	सहस्त्र दल कमल	7
3.	स्थूल लोक के छह चक्र पिण्ड	13.	आज्ञा चक्र	6
		14.	कण्ठ चक्र	5
		15.	हृदय चक्र	4
		16.	नाभि चक्र	3
		17.	इंद्रिय चक्र	2
		18.	गुदा चक्र	1

संतों का सिद्धांत आत्मा को नीचे के चक्रों से उठा कर उसे सर्वोच्च शिखर तक, जहां से आत्मा का शरीर में प्रवेश हुआ है, पहुंचाना है। इस प्रकार आत्मा उस परमात्मा परमेश्वर तक पहुंच जाती है, जहां से उसका अवतरण हुआ। उत्थान का मार्ग यही है जो अवतरण का है। अंतर केवल इतना ही है कि इस उत्थान की स्थिति में क्रम उलटा है, अर्थात् उतार के स्थान पर ऊपर को चढ़ाव का क्रम है।

इस सिद्धांत को इस रुप में भी व्यक्त किया जा सकता है कि इसमें जीवन-धारा प्रवाह को नीचे उतरने के स्थान पर उलट धार, अर्थात् गति को नीचे से ऊपर की दिशा में परिवर्तित कर दिया। यह सब कैसे होता है, इसी की क्रिया का विश्लेषण किया गया है। अगले अध्याय में हम प्रत्येक चक्र एवं कमल की व्यापक चर्चा करेंगे।

ब्रह्मांड तथा अण्ड के द्वितीय और तृतीय खंड के विभाजन में विशेष अंतर नहीं है। कुछ संत अण्ड की ऊंची श्रेणियों को ब्रह्मांड कहते हैं। ऊँची श्रेणियों के चढ़ाव के मार्ग में इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। हमारे पाठक गण इस अंतर की उपेक्षा कर सकते हैं।

द्वितीय अध्याय

पिण्ड (स्थूल) के प्रथम छह खंड

1. गुदा चक्र

नीचे से पहला चक्र गुदा चक्र है। इसकी स्थिति भी गुदा पर ही है। इसका रंग लाल है। इस कमल के चार दल (पंखुड़ियाँ) हैं। इस चक्र को जय करने का मंत्र (क्लीं) है। उस के देवता भगवान गणेश हैं। इनके शरीर का रंग लाल है। इन्हें इस चक्र के अधिष्ठाता के रूप में जाना जाता है।

इस चक्र का कार्य शरीर के दूषित पदार्थों को बाहर निकालना है। इसके द्वारा जो मल निकलता है, वह मिट्टी हो जाता है। यहां पृथ्वी तत्व प्रधान है। भगवान गणेश यहां अपनी दो पत्नियों ऋद्धि और सिद्धि, के साथ निवास करते हैं।

आर्य जाति, जिनको हम अब हिंदू कह कर संबोधित करते हैं, उनकी संस्कृति में किसी भी पवित्र कार्य के आरंभ करते समय भगवान गणेश की ही सर्वप्रथम आराधना की जाती है। यदि भगवान गणेश की मूर्ति या चित्र उपलब्ध नहीं हो तो उसके स्थान पर मिट्टी के ढेले पर रंग बिरगा धागा (कलावा) लपेट कर उन का प्रतीक बना लिया जाता है। यह प्रत्येक गुदा के कार्य की ओर संकेत देता है जिसका निकला हुआ मल मिट्टी हो जाता है। ऋद्धि का अर्थ बाहुल्य (बरकत) एवं सिद्धि का अर्थ अदृश्य शक्ति है। इस देवता के पूजन के पश्चात जो भी कार्य आरंभ किया जाता है, आरंभ किया जाता है, उसमें विघ्न बाधा नहीं पड़ती, ऐसा माना जाता है। हम अपनी सहायता के लिए इन (गणेश) के पूजन के साथ-साथ बाहुल्य की देवी 'ऋद्धि' एवं अदृश्य शक्ति की देवी 'सिद्धि' का भी आह्वान करते हैं।

इस चक्र को सिद्ध करने से भगवान गणेश एवं ऋद्धि व सिद्धि भी वश में हो जाती हैं और अभ्यासी का शुभारंभ हो जाता है। उनके इच्छानुसार सब कुछ मिल जाता है और भगवान गणेश के साथ रहने वाली बाहुल्य तथा अदृश्य शक्ति भी प्राप्त हो जाती है। इस चक्र को जय करने के लिए 'क्लीं' मंत्र का जाप किया जाता है।

संतों ने चक्र को वश में करने की विधि बतलाई है। इसका वर्णन नीचे दिया जा रहा है। मन को वश में करने के लिए सबसे पहले पांच शत्रुओं को जय (नियंत्रित) करने की आवश्यकता है। ये शत्रु हैं-

1. काम 2. क्रोध 3. लोभ 4. मोह 5. अहंकार

काम

अर्थात् विषय वासना। मन को जीतने के लिए प्रथम 'शत्रु' काम पर विजय प्राप्त करनी होगी। काम-वासना पूर्ण रुप से त्याज्य है। कामातुर दृष्टि से किसी स्त्री को नहीं देखना चाहिए। कामी पुरुष ने तो अपने मन को एकाग्र कर सकता है, और मैं भगवन्नाम को ही दृढ़ता से पकड़ सकता है जिसके द्वारा ऊंची श्रेणियों पर चढ़ना संभव हो सके। ऐसे पुरुष का मन मलिन रहता है। काम वासना उसकी सूरत का प्रभाव तथा धार नीचे की ओर ले जाती है। इस कारण काम वासना पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है।

क्रोध

मन का दूसरा शत्रु क्रोध है। क्रोध में मनुष्य अपने मन का संतुलन तथा विवेक खो बैठता है। ऐसी स्थिति में अनेक न करने योग्य कर्म कर बैठता है। इससे काम वासना द्वारा नीचे लाई गई सूरत निम्न स्तर में फैल जाती है।

लोभ

मन का तीसरा शत्रु लोभ है। यह सांसारिक वस्तुओं का लालच, चाह एवं इच्छा को बढ़ाता है। जब मनुष्य की एक इच्छा की पूर्ति हो जाती है तो उसकी दूसरी इच्छाएं उत्पन्न होने लगती हैं। इस प्रकार इच्छाओं का चक्र फैलता जाता है और मनुष्य को कभी भी सन्तोष नहीं मिल पाता। लालची मनुष्य के चारों और घृणा का वातावरण उत्पन्न हो जाता है। चाहे वह कितना ही गुणवान हो। सभी ओर से घृणा एकत्र कर लेता है। लोभ उसके मस्तिष्क को उच्च विचारों पर केंद्रित नहीं होने देता। उसका सदैव यही प्रयास रहता है कि वह सांसारिक वस्तुओं को एकत्र

करके अपने पास रखता रहे।

मोह

मन का चौथा शत्रु मोह है। मनुष्य जब किसी वस्तु को पा लेता है तो वह उससे बंध जाता है। इतना जुड़ जाता है कि उसे छोड़ना नहीं चाहता। उसकी संपत्ति, परिवार और उसकी अधिकृत अन्य वस्तुएँ उसको इतना आकर्षित करती हैं कि मैं उन्हीं में लिप्त हो जाता है।

अहंकार

मनुष्य का पाँचवाँ शत्रु अहंकार अर्थात् 'मद' है। जब काम वासना से सुरत अधोगति को पहुंच जाती है और क्रोध के प्रभाव से नीचे के संपूर्ण क्षेत्र में व्याप्त हो जाती है तो यह अहंकार (अभिमान) उसे ऊपर के स्तरों पर उठने नहीं देता।

इन पांचों शत्रुओं को वश में करने के लिए और उन पर विजय प्राप्त करने के लिए, काम को शील से, क्रोध को क्षमा से, लोभ को सन्तोष से ,मोह को विवेक से और अहंकार को दीनता से परास्त करना चाहिए।

असत्य का पूर्ण बहिष्कार करो। असत्य भाषी का कोई भी विश्वास नहीं करता। चारों ओर से उसे घृणा ही मिलती है। मांस व मदिरा का भी पूर्ण त्याग आवश्यक है। यह दोनों ही वस्तुएँ तामसिक हैं। मस्तिष्क को तमोगुण मय बना देती हैं। ये सूरत को काम व क्रोध की ओर अग्रसर करती हैं जो पवित्र जीवन के लिए अनुपयुक्त हैं।

सद्गुण प्राप्त हो जाते हैं तो झूठ का वातावरण ढ़हने लगता है और सच्चे आंतरिक मार्ग पर चलने की सूझबूझ स्वतः ही प्राप्त होने और बढ़ने लगती है।

मनुष्य शरीर को जो चेतना का तथा ऊंचा उठने का एकमात्र साधन है उसे अंदर व बाहर से पूर्ण स्वच्छ करना होगा। बाह्य स्वच्छता के लिए स्नान आवश्यक है। योगी पुरुष अपने शरीर को भीतर से नेती, धोती व बस्ती क्रिया से शुद्ध करते हैं

। नेती क्रिया में एक सूत का धागा, जिसका एक सिरा मोम में भिगोया होता है, नाक के नथुने में डालकर दूसरे नथुने से निकालते हैं । इससे नाक के दोनों छिद्रों को साफ किया जाता है। धोती क्रिया में चार अंगुल चौड़े और कई हाथ लंबे मलमल के टुकड़े को पानी में भिगो कर मुंह से पेट के अंदर निगला जाता है। पूरी लंबाई तक निगलते हुए कपड़े का दूसरा सिरा मुँह के बाहर रखा जाता है। बाद में बाहर के सिरे को पकड़ कर पूरा कपड़ा पेट से बाहर निकाल लिया जाता है। इस क्रिया में अधिक निपुण लोग पेट की न्योली क्रिया करने के बाद कपड़े को बाहर निकाल लेते हैं। इस प्रकार पेट व अन्न नलिका को साफ किया जाता है। बस्ती एक प्रकार से एनीमा की क्रिया है। पानी को गुदा में अंदर खींच कर कुछ समय बाद बाहर निकाल दिया जाता है। इससे पेट के अधोभाग की आंखें साफ हो जाती हैं। उदर व अंतड़ियों के साफ हो जाने से अभ्यासी अपने शरीर को स्वस्थ व हल्का अनुभव करता है।

इससे आगे की क्रिया प्राणायाम है । इसमें श्वास पर नियंत्रण कर के अभ्यास किया जाता है। पद्मासन लगाने के लिए अपनी टाँगों को इस प्रकार मोड़ें कि तलवे व एड़ी ऊपर की ओर देखते रहें और मेरुदंड बिल्कुल सीधा रहे । प्राणायाम विधि की तीन अवस्थाएं इस प्रकार हैं -

1. पूरक श्वास को अंदर लेना
2. कुंभक श्वास को रोके रखना
3. रेचक श्वास को बाहर निकालना

इन तीनों गतियों के समय का अनुपात एक, दो और चार होता है। कुछ विशेषज्ञ रेचक के बाद और पूरक के पहले श्वास को बाहर रोकने का भी निर्देश देते हैं। यह अभ्यास अल्प समय से लेकर दीर्घ समय तक बढ़ाया जा सकता है। यह योगाभ्यास और दीर्घायु के लिए अत्यंत लाभदायक है।

केवल प्राणायाम के उच्चस्तर के अभ्यास से योगी पुरुष समस्त बाह्य द्वारों को बंद करके घण्टों के लिए ही नहीं अपितु सप्ताहों और महीनों के लिए भी समाधि में चले जाते हैं।

फिर योगी पुरुष अपना ध्यान गुदा की ओर केंद्रित करके 'क्लीं' मंत्र का जाप करते हैं। इस प्रकार सुरत की धारा जो विभिन्न स्थानों में बिखरी हुई होती है, गुदा बिंदु पर आकर केंद्रित हो जाती है। उपर्युक्त विधि के प्रयास करने पर, इस चक्र पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। इस नियंत्रण से शक्ति में वृद्धि एवं विकास होता है।

भारतीय योगी इन शक्तियों का भली प्रकार विकास किया करते हैं। इन शक्तियों के विकसित होने के पश्चात ऋतु परिवर्तन का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। ग्रीष्म ऋतु की कड़ी धूप और शीतकाल में भी उन्हें बिना वस्त्रों के देखा जा सकता है। कुछ साधु सिद्धियां प्राप्त कर लेते हैं। उनका प्रदर्शन या तो अपनी विशेष योग्यता और यश के लिए करते हैं या फिर अपनी आजीविका अर्जित करने के लिए करते हैं। इन अदृश्य शक्तियों का जब दुरुपयोग किया जाता है तो वे अधिक समय तक उनके अधिकार में नहीं रह पाती। शक्तियों को अपने अधिकार में रखने के लिए या पुनः प्राप्त करने के लिए उन्हें बार-बार प्रयास करने पड़ते हैं। जो अभ्यासी इन शक्तियों को सांसारिक कार्यों में नहीं लाते और केवल अपने आध्यात्मिक विकास में उपयोग करते हैं, वह ऊपर के चढ़ाव में तीव्र गति से प्रगति करने में सफल रहते हैं।

भगवत् प्रेम के सच्चे उपासक इन सिद्धियों को कोई महत्व नहीं देते। वह सद्गुरु की सहायता से उनकी उपेक्षा कर देते हैं और परमात्मा के प्रेम मार्ग पर आगे बढ़ते चले जाते हैं।

2. इंद्रिय चक्र

अगला चक्र इंद्रिय चक्र है। इसे स्वादु चक्र भी कहते हैं। यह नीचे से दूसरा चक्र है और इसका स्थान लिंग है। इस कमल का रंग सफेद मिला हुआ काला है। इस कमल की छह पंखुड़ियाँ (दल) हैं। इस चक्र के देवता भगवान ब्रह्मा हैं, जो सृष्टि की रचना करते हैं। वह अपनी अर्द्धांगिनी सावित्री के साथ यहां निवास करते हैं। इस चक्र का मूल तत्व जल है। इस चक्र को वश में करने का मंत्र 'ॐ' है।

इस चक्र को जय करने के लिए योगी पुरुष अनेक प्रकार के साधन करते हैं। कुछ योगी लिंग द्वारा पानी को ऊपर चढ़ाते हैं। आगे चलकर वे पारा तक को ऊपर चढ़ाने का अभ्यास करते हैं। इस चक्र के 'ॐ' मंत्र का जाप, गुदा चक्र के 'क्लीं' मंत्र के समान ही है। इस चक्र पर ध्यान एकाग्र कर के, इसके मंत्र का जाप करके इसको जय करते हैं। इस चक्र पर विजय प्राप्त करने से ब्रह्मचर्य सधता है और वीर्य रक्षा होती है, जो यौगिक क्रिया में सफलता पाने के लिए महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

इंद्रिय (लिंग) और अगले चक्र 'नाभि' के बीच एक नाली होती है, इसे 'कुंडलिनी' कहते हैं। यह नाड़ी गर्दन के पीछे मेरुदंड के सहारे नाभि तथा इंद्रिय चक्रों के बीच तक पहुँचती है। सर्प के लपेट कर बैठने की आकृति को कुंडली कहते हैं। यह नाड़ी इस आकृति से मिलती-जुलती है, इसलिए इसका नाम को 'कुंडलिनी' रखा गया है। जीवन की धारा इसी नारी के द्वारा ऊपर से नीचे की ओर, शरीर के प्रत्येक भाग में प्रवाहित होती है। जीवन की इस नीचे की ओर जाने वाली धारा की प्रवृत्ति को योगी लोग परिवर्तित कर के ऊपर की ओर मोड़ देते हैं। इसके प्रवाह की गति को ऊपर की ओर करते समय इसका नाम 'सुषुम्ना' हो जाता है। यह मेरुदंड के अंदर ब्रह्मरंध्र के साथ ही प्रवाहित होती हैं।

योगी पुरुष जब इस कुंडलिनी को जागृत कर लेते हैं तो अनेक अन्य सिद्धियां स्वतः ही प्राप्त हो जाती हैं। इन सिद्धियों से वह कोई भी आश्चर्यजनक कार्य कर सकते हैं। इन सिद्धियों का दुरुपयोग करने से स्वतः ही चली जाती हैं। आत्मनिष्ठ योगी ऐसी शक्तियों की ओर कोई ध्यान नहीं देते हैं। साथ ही इस बात के लिए बहुत सतर्क रहते हैं कि किसी भी रुप में इन शक्तियों का दुरुपयोग ना हो।

3. नाभि चक्र

नीचे से ऊपर की ओर का तृतीय चक्र नाभि 'चक्र' है। यह नाभि में स्थित है। इसके दल के आठ पंखुड़ियाँ हैं। इसका रंग श्वेत है। कुछ विद्वान इसका रंग नीला कहते हैं। भगवान विष्णु इस चक्र के देवता हैं। वह अपनी अर्धांगिनी लक्ष्मी देवी के साथ यहां निवास करते हैं। लक्ष्मी देवी धन और समृद्धि की देवी हैं।

भगवान शिव भी इनकी सेवा में प्रस्तुत रहते हैं। इस चक्र का तत्व अग्नि है। इसका जप मंत्र 'ह्रीं' है।

भगवान विष्णु सृष्टि का पालन पोषण करने वाले हैं। वे शेषनाग पर विश्राम करते हैं। इस मानव शरीर की अंतड़ियाँ कुंडली बांध कर बैठे सर्प के समान हैं। विष्णु भगवान की अर्द्धांगिनी देवी लक्ष्मी ही यहां की गतिविधियों को दिशा देती हैं। यहां का कमल श्वेत प्रकाश से चमचमाता रहता है।

उपर्युक्त पंक्तियों में पिण्ड के केवल तीन चक्रों का वर्णन किया गया है। पशु, पक्षी व कीड़े मकोड़े आदि इन्हीं तीन चक्रों पर रहते हैं। प्रकृति के नियंत्रण के कारण स्थूल पिण्ड के अन्य उच्च चक्रों का उनमें विकास नहीं हो पाता है। इसके फलस्वरूप उनमें विचार करने और मानव की भांति सूझबूझ की क्षमता नहीं होती है। उनका सारा जीवन इन्हीं तीन चक्रों में व्यतीत हो जाता है। उदाहरणार्थ पेट भरने के लिए खाते हैं, 'नाभि चक्र' के अधीन संभोग का आनंद लेते हैं, 'इंद्रिय चक्र' के अधीन और आराम से आलस्य का जीवन व्यतीत करते हुए मल त्याग आदि में 'गुदा चक्र' के आधीन व्यस्त रहते हैं। जब तक मनुष्य इन चक्रों में फंसा रहता है, वह पशुओं के ही समान है। जब मनुष्य इन चक्रों से ऊपर उठता है तो वह 'हृदय चक्र' पर पहुंचता है। 'हृदय चक्र' भगवान शिव का स्थान है। भगवान शिव को पशुपति नाथ भी कहते हैं। इसका अर्थ है पशु समाज के देवता।

4. हृदय चक्र

नीचे से चौथा चक्र 'हृदय चक्र' है। इसका स्थान वक्ष स्थल के बाईं और हृदय पर है। यहां नाड़ियों का केंद्र है। इसे शरीर के तंतुओं का जाल (Cordial Plexus) भी कहते हैं। यह बारह दलों (पंखुड़ियों) का कमल है। इसका रंग नीला है। यहां का प्रधान तत्व 'वायु' (वायुमंडल) है। इस चक्र के देवता भगवान शिव हैं। वे यहां अपनी अर्द्धांगिनी देवी गौरी के साथ ध्यान मुद्रा में निवास करते हैं। 'सोऽहं' इस चक्र का जाप मंत्र है।

ऐसा कहते हैं कि भगवान शिव ने सारी इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर उन्हें

भस्म कर दिया और उस भस्म को अपने शरीर पर मल लिया। विषैले जंतु, सर्प, बिच्छू आदि उनके शरीर पर रेंगते रहते हैं, पर वे भगवान शिव का कोई अनिष्ट नहीं कर पाते हैं। मानव की आवश्यकताएं और इच्छाएं भी इन जंतुओं की भांति ही विषैली होती हैं। पर जब उन पर विजय प्राप्त कर ली जाती है तो वे मनुष्य को कोई हानि नहीं पहुंचा पाती। भगवान शिव की सवारी पवित्र बैल 'नंदी' अपने स्वामी के सम्मुख निःशब्द, शांति स्थिरता से बैठा रहता है। 'नंदी' ब्रह्मांडी मन का प्रतीक है। उसने अपनी प्रबल गति अर्थात् अपनी प्रबल आवश्यकताओं, इच्छाओं का अंत कर के, अपने को स्थिर कर लिया है। तथापि, भगवान शिव अपनी इच्छा अनुसार नंदी पर सवारी करते हैं, जिस का तात्पर्य है वही इस मन के स्वामी हैं।

इस चक्र पर विजय प्राप्त करने की विधि भी इस पर ध्यान लगाकर 'सोऽहं' का जाप करना है। जब इस चक्र पर विजय प्राप्त हो जाती है तो समस्त इंद्रियों स्वतः ही नियंत्रित हो जाती हैं। इंद्रियाँ भगवान शिव के गण हैं जो भगवान के सेवकों की सेना है। यह भगवान शिव की प्रशंसा में विजय गान करते हैं, जिस का तात्पर्य यह है कि उन्होंने अपने आप को पूर्णतया भगवान को समर्पण कर दिया है।

सूफी साधक अपने ध्यान पद्धति हृदय चक्र से आरंभ करते हैं जिसे वे अपनी भाषा में 'क़ल्ब' कहते हैं। अपने शोध कार्य द्वारा उन्होंने चार अन्य स्थानों का ध्यान करके पता लगाया है, जहां शब्द सुनाई पड़ता है और जिनका हृदय चक्र से अति निकट का संबंध है। हृदय स्थल के समानांतर दाहिनी और भी इसी प्रकार का एक केंद्र है जिसे 'रूह' कहते हैं। बाई और हृदय के ठीक चार पाँच इंच ऊपर एक केंद्र है, जिसे 'सर' कहते हैं। इसी प्रकार दाहिनी ओर रूह केंद्र के चार पाँच इंच ऊपर भी केंद्र है जिसे 'ख़फ़ी' कहते हैं। पाँचवाँ केंद्र 'वक़्फ़ा' गले के नीचे है। वे इन्हीं पांचों केंद्रों पर जाप करते हैं। उनकी मान्यता है कि इन केंद्रों पर जाप करने से तथा इनके जागृत होने से उच्च मंडलों तक पहुंचने में सुगमता रहती है। इन पांचों केंद्रों पर ध्यान करने का विस्तृत विवरण भूमिका में देने का प्रयास किया गया है।

5. कण्ठ चक्र

हृदय चक्र के ऊपर पाँचवाँ 'कण्ठ चक्र' है जो गले में होता है। यह सौलह पंखुड़ियों का कमल है। इसका रंग गहरा नीला है। कोर्ट 'आकाश' इस स्थान का प्रधान तत्व है। इसकी अधिष्ठात्री देवी 'अविद्या' है। इसका अर्थ है, अज्ञान। इस देवी का दूसरा नाम दुर्गा है। इन्हें ब्रह्मा, विष्णु और शिव की माँ कहते हैं। इस स्थान का जप मंत्र 'श्रीं' है। यहां राजस व तामस दो प्रधान गुण हैं। जब इन गुणों का प्रवाह हृदय की ओर होता है तो मन कभी अच्छी वृत्तियों की ओर और कभी बुरी वृत्तियों की ओर बह जाता है। जब इनका प्रवाह है नाभि, गुदा व इंद्रिय की ओर होता है तो ये क्रोध, भूख, काम व आलस्य आदि उत्पन्न करते हैं।

विश्वव्यापी धाराप्रवाह अर्थात् सृष्टि का शक्ति प्रवाह है तीन प्रधान भागों में विभाजित हैं। यह भाग हैं सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। सत्व या सत् पवित्र, शुद्ध एवं उज्ज्वल है। रजोगुण या राजस या रज, सृष्टि का प्रधान अंग है और सदा कार्यशील रहता है। तमोगुण या तामस या तम, पैशाचिक, अंधकारमय तथा अपवित्र, मंद एवं आलसी है।

माया अर्थात् प्रकृति दो प्रकार की है, 'शुद्ध माया और मलिन माया।' शुद्ध अर्थात् निर्मल तथा मलिन अर्थात् अपवित्र। इन्हें विद्या अर्थात् ज्ञान और अविद्या अर्थात् अज्ञान के नाम से भी जाना जाता है। 'शुद्ध माया' छठे चक्र से आरंभ होती है। 'मलिन माया' कण्ठ में निवास करती है और तीनों शक्तियों की कार्य प्रणाली का मार्ग दर्शन करती हैं। ये तीन शक्तियाँ हैं। शिव हृदय में, विष्णु नाभि में, और ब्रह्मा जननेंद्रियों में। यह तीनों शक्तियाँ संसार की रचना करती हैं, पालन पोषण करती हैं और देखभाल तथा संरक्षण करती हैं एवं विनाश करती हैं। कण्ठ इन शक्तियों के उत्थान तथा उत्पत्ति का केंद्र है।। देवी अविद्या अर्थात् मलिन माया इन का प्रधान केंद्र है।

इस पाँचवें चक्र अर्थात् कण्ठ चक्र पर विजय प्राप्त करने के लिए योगी लोग कण्ठ केंद्र पर ध्यान लगाकर 'श्रीं' मंत्र का जाप करते हैं।

6. आज्ञा चक्र

नीचे से छोटा चक्र 'आज्ञा चक्र' है। इसका स्थान दोनों भौहों के मध्य में ललाट के एक इंच अंदर है। इसके कमल की दो पंखुड़ियाँ हैं और रंग गहरा भूरा है। यह आत्मा का स्थान है। निद्रा में यह आत्मा कण्ठ में उतर आती है। गहरी निद्रा में हृदय तक उतर आती है। ऊपर के चक्रों से जीवन धारा इसी केंद्र पर एकत्रित होती है और यहां से नीचे के चक्करों में तथा समस्त स्थूल शरीर में फैल जाती है।

यहां आत्मा पिंडी मन अर्थात् स्थूल मन के साथ रहती है। संत कबीर ने आत्मा को 'वक्र', एक सफेद पेंडुकी की और स्थूल मन को 'काले भँवरे' की संज्ञा दी है। पेंडुकी जो श्वेत और स्वच्छ होती है, आत्मा का प्रतीक है। भँवरा जो काला और मलिन होता है, स्थूल मन का बोध कराता है। स्थूल मन की सबसे ऊंची पहुंच आज्ञा चक्र तक है। वह इससे आगे नहीं जाता है। जब आत्मा ऊपर ऊंचे चक्रों तक जाती है तो इसके साथ शुद्ध ब्रह्मांडी मन ही होता है।

यहां एक महत्वपूर्ण सिद्धांत की व्याख्या करनी है। नीचे के पांचों चक्र स्थूल हैं और उन के शुद्ध करने तथा उन पर विजय प्राप्त करने की विधि 'हठयोग' के अंतर्गत आती है। 'हठ' का अर्थ है, अत्यधिक आग्रह पूर्ण दृढ़ता। संतों का मार्ग तो परमात्मा से प्रेम का है। वहां हठ के लिए कोई स्थान नहीं है। वे तो केवल प्रेम मार्ग को ही अपनाते हैं। वे न तो कभी कठोरता का और ना कभी हठ का ही प्रयोग करते हैं। जो भी है, ठीक है। वह वस्तुतः सब कुछ परमात्मा की इच्छा पर छोड़ देते हैं। इसलिए उन्होंने हृदय चक्र, नाभि चक्र व स्वादु चक्र, इन सभी नीचे वाले चक्रों का शोध करना आवश्यक नहीं माना है। उनका सिद्धांत है कि आज्ञा चक्र पर ध्यान लगाने से नीचे के चक्र स्वतः शुद्ध एवं पवित्र हो जाते हैं और उन पर विजय प्राप्त हो जाती है।

तथापि, कुछ संतों ने, विशेषकर सूफी संतों ने हृदय को पवित्र करने की क्रिया प्रचलित की है। आज्ञा चक्र के पहले, हृदय चक्र पर ही ध्यान केंद्रित करते हैं। उनका अनुभव है कि हृदय चक्र के साथ दूसरे चक्र दूसरे चारों चक्रों अर्थात् कुल पांच चक्रों को जब पवित्र कर लिया जाता है तब आज्ञा चक्र या उसके ऊपर पहुंचने का मार्ग सरल हो जाता है। इसलिए सूफी संतों ने ध्यान का प्रारंभ हृदय से करना

आवश्यक बतलाया है। उनका कहना है कि सद्गुरु को अपने शिष्य को किसी भी नीचे के स्थान से उच्च स्तर तक पहुंचाने में समर्थ होना चाहिए। इसका एक कारण यह भी है कि हृदय पर ध्यान करने से सिद्धियाँ जागृत नहीं होती हैं। इसमें किसी प्रकार की कठिनाई या विघ्न नहीं होता है। इसके साथ-साथ वस्तुतः नीचे के चक्र भी सुगमता से जय हो जाते हैं। इससे नीचे के आधार की पुष्टि होकर उच्च स्तर तक चेतना को उठाने के लिए अभ्यासी को बहुत बड़ी सहायता उपलब्ध होती है।

आजकल के युग में मनुष्य की आयु सीमित है और वह दुर्बल भी हो गया है। उसके पास गुदा चक्र से आज्ञा चक्र तक आत्मा की कठिन चढ़ाई करने के लिए पर्याप्त समय नहीं है। जब इस मानव जीवन का एक बार अंत हो जाता है, तब उसे दोबारा सरलता से मनुष्य योनि भी प्राप्त नहीं हो पाती है। अपने पिछले कर्मों के आधार पर, प्रकृति के नियमानुसार आत्मा को विभिन्न योनियों में जन्म मरण का चक्कर पूरा करना पड़ता है। अतः आत्मा को पुनः मनुष्य योनि प्राप्त कर सकना पूर्णतया अनिश्चित है। इसीलिए संतों के अनुसार परमात्मा परमेश्वर को प्राप्त करने का प्रयास मनुष्य योनि में ही कर लेना चाहिए। क्योंकि, मनुष्य योनि के अतिरिक्त और किसी भी योनि में यह सफलता संभव नहीं है। संत लोग यही उपदेश देते हैं कि जीवन के अमूल्य समय को नीचे के चक्रों पर विजय प्राप्त करने के परिश्रम में व्यर्थ व्यय न करके अपना अमूल्य समय और शक्ति ऊंचे से ऊंचे चक्रों तक पहुंचने में लगा देनी चाहिए।

इसलिए वह नीचे के चक्रों को छोड़ कर, आज्ञा चक्र से ध्यान आरंभ करवाते हैं। सूफी संत ध्यान को चौथे चक्र, हृदय से आरंभ करवाते हैं। हृदय चक्र के वर्णन में यह स्पष्ट किया गया है कि हृदय चक्र पर ध्यान केंद्रित करने से नीचे के चक्र, उनके देवता, उनकी अर्धांगिनियाँ अनुचरों और शक्तियों आदि पर नियंत्रण स्वतः ही प्राप्त हो जाता है। अनेक प्रकार की अदृश्य विलक्षण शक्तियाँ जिन्हें सिद्धियां कहते हैं, वे भी स्वतः ही अधिकार में आ जाती हैं परंतु इनसे आत्मा को शांति और धैर्य नहीं मिल पाता। जो अभ्यासी सिद्धियों के चमत्कार के जाल में फंस जाते हैं, मैं शीघ्र ही नीचे के चक्रों की ओर उतर आते हैं और फिर ऊंचे चक्रों की ओर कभी भी नहीं पहुंच पाते हैं।

'आज्ञा चक्र' सबसे ऊंचा स्थान है, जहां तक हठ योग द्वारा पहुंचा जा सकता है। आज्ञा चक्र तक पहुंचने के पश्चात अभ्यासी संतोंष अनुभव करता है और विश्वस्त हो जाता है कि वह वास्तव में अपने लक्ष्य तक पहुंच गया है। संसार में धर्म और संप्रदायों की सबसे ऊंची पहुंच केवल आज्ञा चक्र तक ही है। कुछ तो इससे भी नीचे चक्रों तक ही पहुंच पाते हैं। संत लोग अपने ध्यान को यहीं से प्रारंभ करते हैं और उनकी सबसे ऊंची पहुंच उस बिंदु तक हो जाती है, जहां इच्छाओं का पूर्ण दमन हो जाता है। जब मनुष्य के पास अभिलाषा और इच्छा ही नहीं रहती तो वह पूर्णतया परमपिता परमेश्वर की दया पर ही निर्भर रहता है, उसी में संतुष्ट रहता है।

सतगुरु द्वारा मार्गदर्शन के बिना अपने व्यक्तिगत प्रयास से आज्ञा चक्र तक पहुंचना असंभव तो नहीं पर कठिन अवश्य है। इस चक्र के ऊपर जाने के लिए उसे ऐसे सद्गुरु की शरण लेना अनिवार्य है जिसकी स्वयं की पहुंच सबसे ऊंचे शिखर अर्थात् परमपिता परमेश्वर तक हो।

अभ्यासी को सतगुरु पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए और उनके प्रति अपने आप को पूर्णतया समर्पित कर देना चाहिए। पूर्ण समर्पण के पश्चात सद्गुरु गुरु मंत्र देते हैं जिसके जब से ऊपर के चक्रों तक चढ़ना सफल हो जाता है। सद्गुरु के साथ समागम और निकट संपर्क तथा साहित्य अर्थात सत्संग से अमूल्य मार्गदर्शन उपलब्ध होता है। ऐसे अभ्यासी को पग-पग पर ऊपर चढ़ने में सद्गुरु सहायक होते हैं।

संस्कृत में सत्संग शब्द दो शब्दों की संधि से बना है। सत्य का अर्थ है जो भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों में विद्यमान हो और संग का अर्थ है, सामंजस्य। सत परमपिता परमात्मा है। संतों का उस से सामंजस्य तथा निकट तम संपर्क सदैव बना रहता है और वह सदा उसी के साथ रहते हैं। ऐसे संत के समागम को ही सत्संग कहते हैं। जहां ऐसे संत उपस्थित नहीं हो, उस सभा को सत्संग नहीं कहा जाता।

भारत के जन सामान्य का ऐसा सहज विश्वास है कि किसी भी प्रकार का कीर्तन जो सामूहिक संगीत एवं भजन द्वारा किया जाता है वही सत्संग है। यद्यपि

सिनेमा व TV, फिल्म से मनोरंजन, नृत्य और साधारण संगीत अथवा व्यर्थ की बातों में समय और शक्ति को नष्ट करने की तुलना में भजन व कीर्तन बहुत श्रेष्ठ है, पर वह वास्तव में सत्संग नहीं है।

आज्ञा चक्र के ठीक ऊपर एक बिंदु है जिसे शिव नेत्र अर्थात् शिवजी का तीसरा नेत्र कहते हैं। सूफी संत अपनी भाषा में इसे नुक्ता ए सुवैदा कहते हैं। पहले बताया जा चुका है यह ब्रह्मांड मन का स्थान है। इस स्थान पर मन को तमस अर्थात अंधकार से छुटकारा मिल जाता है। वह सत और सत गुण के पवित्र प्रकाश में आ जाता है। वह बहुत शुद्ध हो जाता है और आत्मा को ऊंचे मंडलों में चढ़ाने में समर्थ हो जाता है।

अन्य संतों की भांति संत कबीर ने भी ऊपर चढ़ने के साधन एवं विधि का वर्णन किया है। सब और से अपने नेत्रों, कानों और मुख को बंद करो। इसका आशय यह नहीं है कि अपने नेत्रों को ढक लो, कानों को अपनी उंगलियों से बंद कर लो और अपने हाथ अपने मुख पर रख लो जैसा कि महात्मा गांधी के तीन बंदर प्रदर्शित करते हैं। इसका वास्तविक अर्थ यह है कि इंद्रियाँ जो सदा संसार की ओर या बाहर की ओर कार्यरत रहती हैं, उनको आंतरिक दिशा में मोड़ कर, बाहर इस संसार से विमुख कर दो। नेत्रों को बाहर कुछ भी देखना नहीं चाहिए। कानों को बाहर की किसी प्रकार की ध्वनि नहीं सुननी चाहिए और न मुख को बोलना चाहिए। ज्ञानेंद्रियों का ध्यान बाहर से हटा कर शिव नेत्र पर केंद्रित कर देना चाहिए। इस स्थान का रुप त्रिकोण है जिसको दो बिंदु दोनों भौहें हैं और सिरा शिव नेत्र की ओर है। जब दोनों नेत्र तीसरे नेत्र की और केंद्रित किए जाते हैं, तब यह तीसरा नेत्र खुल जाता है और अपना कार्य आरंभ कर देता है जिससे कि आनंद दायी आंतरिक प्रकाश दृष्टिगोचर होता है। यह ध्यान शारीरिक न होकर मानसिक होना चाहिए। साथ ही तनाव रहित होना चाहिए।

हमारी बाहरी आंखें स्थूल पदार्थ की बनी हुई है और वह बाहरी प्रकाश चाहे वह सूर्य, चंद्र, तारे तथा दीपक का हो, इसकी अनुपस्थिति में देख नहीं सकती है। पर, शिव नेत्र स्वयं प्रकाशित होता है और उसको देखने के लिए किसी प्रकार

के अतिरिक्त बाहरी प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती । अनहद ध्वनि अर्थात् अनाहत ध्वनि यहां पर निरंतर सुनाई देती है यह ध्वनि एक कीड़े झींगुर की ध्वनि के समान या सीटी के शब्द के समान प्रतीत होती है।

इस स्थान पर जो शब्द सुनाई देता है, उसे अनहद कहते हैं, जिसका अर्थ है, सीमा रहित । अनहद शब्द संस्कृत शब्द अनाहत का अपभ्रंश मालूम होता है । इसकी व्याख्या इस प्रकार है-

आहत- वह शब्द जो किसी चोट से उत्पन्न होता हो।

अनाहत - वह शब्द जो बिना किसी चोट के उत्पन्न हो।

आहत ध्वनि आकस्मिक होती है और कुछ समय पश्चात लुप्त हो जाती है। अनाहत ध्वनि आवृत्ति रहित निरंतर होती रहती है। घंटी का बजाना आहत शब्द का उदाहरण है। जबकि कुछ समय तक के लिए शब्द का गूंजना अनाहत का अधूरा उदाहरण है। यह अनाहत की पूर्ण प्रतिक्रिया इसलिए नहीं कही जा सकती क्योंकि कुछ समय पश्चात यह ध्वनि लुप्त हो जाती है। हमारे एक अन्य पर्याप्त उदाहरणों से भी इसको समझ सकते हैं । जैसे, वह ध्वनि को गतिशील रेल गाड़ी, मोटर या वायुयान से उत्पन्न होती है। इसमें उस प्रकार की ध्वनि सम्मिलित नहीं जो इंजन रेल की पटरी से उत्पन्न होती है या जो चिमनी के धुआं निकलने से उत्पन्न होती है । वह ध्वनि जो गति की शक्ति से उत्पन्न होती है उसका पर्याप्त उदाहरण हो सकता है । यदि हम पृथ्वी के चक्कर लगाने की ध्वनि को सुन सकते, तो वह अनाहत ध्वनि का उचित उदाहरण होगा। वह ध्वनि निरंतर होती रहती है क्योंकि वह स्वतः है अद्भुत है।

जब आत्मा शिव नेत्र के ऊपर यात्रा करती है, तब तारामंडल में प्रवेश पाती है। यह स्थल सितारों का व्यवस्थित विश्व है, जहां सूर्य, चंद्र और सितारे रहते हैं। इस तारामंडल को पार करना होता है और इसके आगे का मार्ग एक पतली-सी शिरा में हैं, जिसे मुक्ति द्वार कहते हैं। यह सुई के छेद या सरसों के दाने के दशवें भाग के बराबर सूक्ष्म है। मनुष्य का मन या चित्त, जो आत्मा के साथ ऊपर जाता

है, ऐरावत के समान विशाल होता है। इस विशाल ऐरावत को उस सुई के छेद के समान सूक्ष्म मार्ग को पार करना होता है। तब ही आत्मा को बंधन से मुक्त होने का अधिकार मिलता है।

सद्गुरु, अभ्यासी के मन को कोमल और सूक्ष्म रूप में परिवर्तित करके इस द्वार को पार करने में सहायता करते हैं। तथा ऐसा लगता है कि यह द्वार आवश्यकता से अधिक विस्तृत है। बिना किसी कठिनाई के अनेकों बार आर-पार आना जाना संभव और सरल है। सद्गुरु पिंडी मन को ब्रह्मांडीय मन में परिवर्तित कर देते हैं, जिसका आकार बहुत सूक्ष्म होता है। इसी कारण संत लोग कहते हैं कि बिना सद्गुरु कृपा और सहायता के मुक्ति द्वार पार करने में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। इसीलिए अभ्यासी को अपनी निर्विवाद श्रद्धा, भक्ति और सेवा से सद्गुरु का प्रेम, दया और कृपा प्राप्त करना परम आवश्यक है।

इसके आगे तीन मार्ग हैं जिनकी उपमा प्रयाग की त्रिवेणी से दी जा सकती है। त्रिवेणी तीन नदियों- गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम है। इस बिंदु पर संतों की वास्तविक त्रिवेणी है। गंगा की दिशा का मार्ग, सीधा मार्ग है। सामान्य रूप से, बाईं ओर का मार्ग योगी ग्रहण करते हैं। इस मार्ग पर रिद्धि और सिद्धि प्रधान होती है। योगी उन के जाल में फंस जाते हैं। इस कारण वह अपने लक्ष्य या इष्ट तक नहीं पहुंच पाते। दाहिनी दिशा का मार्ग, स्थल के विशाल टुकड़ों की ओर चला जाता है। संतों का मार्ग मध्य का है। जो गंगा का है और सीधा चला जाता है। इस मार्ग को कभी भी त्यागना नहीं चाहिए।

पिंड अर्थात् स्थूल शरीर का वर्णन यहां समाप्त होता है। यहां ब्रम्हांडी मन आत्मा सहित मुक्ति द्वार को पार कर लेता है। यहां जन्म, मृत्यु के चक्र से उसका छुटकारा हो जाता है।

ऊपर के चक्र पिंड के निचले चक्रों को भी शक्ति और बल प्रदान करते हैं। आज्ञा चक्र, हृदय, नाभि, और इंद्रिय चक्रों को शक्ति प्रदान करता है।

तृतीय अध्याय

ब्रह्मांड और अंड के छह चक्र

पिछले अध्याय में आत्मा और पिंड के प्रथम 6 चक्रों को पार करने की व्याख्या की गई है। यहां स्थूल चक्रों का चढ़ाव समाप्त होता है। इनमें आज्ञा चक्र सबसे ऊंचा और अंतिम है। मुक्ति द्वार पार करने के पश्चात चढ़ाव सूक्ष्म और ऊंचे स्थलों के लिए आरंभ होता है। मुक्ति द्वार पार करने के पश्चात आत्मा जीवन और मृत्यु के सामान्य चक्र से मुक्त हो जाती है तो भी परमात्मा से पुनर्मिलन के लक्ष्य तक पहुंचने के लिए पर्याप्त दूरी रह जाती है।

7. सहस्त्र दल कमल

दूसरा चक्र जहां पहुँचते हैं, उसे सहस्त्रदल कमल कहते हैं। यह कमल सहस्त्र पंखुड़ियों का है। नीचे से यह सातवाँ चक्र है। यह आज्ञा चक्र के ऊपर, सिर के पीछे की ओर स्थित है। यहां अत्यधिक चकाचौंध करने वाला प्रकाश है जैसे सहस्त्रों दीप शिखाएँ प्रज्वलित हों। इस कमल की सहस्त्र पंखुड़ियाँ चारों ओर प्रकाश प्रसारित करती हैं और पिंड के तीनों लोकों को आज्ञा चक्र से होती हुई उनके रख रखाव के लिए शक्ति पहुँचाती हैं।

यहां दस प्रकार की ध्वनियों के स्वर सुनाई देते हैं। उनका शब्द अति आकर्षक है। यह शब्द शंख या घड़ियाल के सदृश्य होता है। इसी शब्द रस की सहायता से आत्मा नीचे के क्षेत्र को पार करके इस स्थान तक पहुँचती है। इस चक्र के देवता भगवान त्रिलोकीनाथ हैं, जो तीनों लोकों के स्वामी हैं। इनको निरंजन भी कहते हैं।

निरंजन देव की छत्रछाया में पहुंचकर आत्मा आनंद का अनुभव करती है। यह सबसे ऊंचा स्थान है जहां साधक प्राणायाम के अभ्यास एवं साधना से पहुंच सकता है। चिदाकाश अर्थात ब्रह्मांड की सीमा यहां समाप्त होती है। प्राण अथवा श्वास की इस के परे कोई पहुंच नहीं है। इस कारण उन्हें इस से ऊपर के क्षेत्रों की

जानकारी नहीं हो पाती। सहस्त्रदल कमल क्षेत्र इतना विशाल है यदि उसके पूरे वर्णन का प्रयास किया जाए तो सहस्त्रों ग्रंथ भर जाएंगे। यहां पहुंचने पर अभ्यासी प्रत्येक वस्तु को विस्तार पूर्वक अवलोकन करने योग्य हो जाता है।

8. त्रिकुटी

सहस्त्र दल कमल के ऊपर आठवाँ चक्र त्रिकुटी है। यह चार पंखुड़ियों का कमल है। इसमें उदय काल के सूर्य के समान लाल प्रकाश होता है यहां के जप का मंत्र ॐ अर्थात प्रणव है। यहां मृदंग की मधुर ध्वनि एवं ॐ शब्द की धीमी गर्जन निरंतर होती रहती है। यहां का प्रधान तत्व जल वायु और अग्नि के मिश्रण का भाववाचक रूप है। इसका स्थापन सहस्त्रदल कमल के ऊपर है।

त्रिकुटी की दिशा का मार्ग अत्यंत संकुचित है और इस मार्ग का प्रवेश एक वक्र नलिका द्वारा है। संत गण इस मार्ग को बंकनाल कहते हैं जिसका अर्थ है टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग। चिकित्सा विज्ञान के अनुसार अंतरीय भाग में दोनों नेत्रों के नीचे एक अर्ध गोलाकार नाड़ी है जिसके दोनों सिरों के ऊपर यह दोनों नेत्र जुड़े रहते हैं। यह स्वयं प्रकाशित है। इसको दृष्टि संबंधी शिरा कहते हैं। यदि इसमें कोई बाधा या अवरोध हो जाता है तो दृष्टि नष्ट हो जाती है। संतों ने संभवत है इसी नाड़ी को बंक नाल कहा है। अर्ध गोलाकार चंद्र बंकनाल का उदाहरण है। इसी प्रकार रामायण में वर्णित भगवान शिव का रत्न जड़ित धनुष भी बंकनाल का ही उदाहरण है।

काल अर्थात समय पिंड के तीनों लोक का अर्थात शिव लोक हृदय, विष्णु लोक नाभि और ब्रह्मलोक जननेंद्रिय का स्वामी है। ईसाई और मुसलमान धार्मिक ग्रंथों में इसे शैतान कहते हैं। काल आत्मा को इन तीनों लोकों में बंदी बना रखा है य़ानि एक दुर्ग में बंद कर रखा है। जब आत्मा को अपने वास्तविक प्रभु परमपिता परमात्मा का स्मरण होता है तो वह माया और इंद्रियों के बंधन को चीरती हुई नीचे के चक्रों को पीछे छोड़ती हुई दयाल देश में जो दया और कृपा का स्थान है अपने प्रभु के स्थल को जाने का प्रयास करती है। यह काल ही है जो आत्मा को वहां तक पहुंचने से रोकता है। वह धमकाता है और नाना प्रकार के प्रलोभन देकर सब प्रकार से उकसाता है। काल, छल कपट का प्रयोग कर बाधाएँ उत्पन्न करता है और

आत्मा को अपने लक्ष्य तक पहुंचने में बाधक बनता है । कुछ स्थानों पर दुष्ट आत्माएँ और भूत प्रेत भय उत्पादन दृश्यों से भयभीत करते रहते हैं । कुछ अन्य स्थानों पर सुंदर युवतियाँ प्रकट होकर अनेक प्रकार के प्रलोभनों आदि से उत्तेजित करती हैं । किंतु यदि अभ्यासी पवित्र नाम के साथ स्थिरता से जुड़ा हुआ है और सद्गुरु का मार्गदर्शन उसे उपलब्ध है तो समस्त बाधाएँ क्षीण हो जाती हैं और एक क्षण में अदृश्य हो जाती हैं । सद्गुरु अभ्यासी इन प्रलोभनों और प्रोत्साहनों की एक झलक भी नहीं पाने देता है । अभ्यासी को अपने सद्गुरु में अटूट विश्वास के साथ-साथ भगवत नाम जपते रहना चाहिए और सद्गुरु की सतत सहायता से अपने लक्ष्य की ओर श्रद्धा और विश्वास से आगे बढ़ते जाना चाहिए ।

भगवान बुद्ध जब बोधि वृक्ष के नीचे अन्न जल त्याग कर दृढ़ निश्चय से आत्मबोध के लिए 18 दिन बैठे रहे थे तो उन्हें भी इसी प्रकार से प्रलोभनों और बाधाओं का अनुभव हुआ था । भीषण वर्षा के साथ आंधियाँ और बिजली की भीषण गर्जना, पापात्मा भूत प्रेत, सुंदर युवतियाँ, ऋद्धियाँ और सिद्धियों की भेंट उन्हें विचलित न कर सकी और न डिगा पाई । अनेक भक्तों व श्रद्धालुओं को इसी प्रकार की यातनाओं और प्रलोभनों द्वारा परीक्षा का सामना करना पड़ा है । इसका विस्तृत वर्णन धार्मिक ग्रंथों में उपलब्ध है ।

संतों ने इस विषय को अपने अनोखे ही ढंग से व्याख्या की है । भगवान परमपिता परमेश्वर समस्त सृष्टि के स्वामी हैं और उनकी शक्ति प्रकृति मां विश्व संचालन को दिशा देती हैं । वह देखती हैं और परीक्षा लेती हैं के परम पिता के वह कौन से पुत्र हैं जो उससे सच्चा प्रेम करते हैं और अभिन्न होने के अतिरिक्त उससे किसी भी प्रकार की आकांक्षा नहीं रखते हैं । इसलिए वह अभ्यासी की कठिन परीक्षा यह परखने के लिए लेती हैं कि वास्तव में वह अपने स्वामी से प्रेम करता है या वह प्रलोभन और प्रोत्साहन आदि में फंस जाने से अपने निर्धारित मार्ग से विचलित हो सकता है । परंतु जब अभ्यासी अपने स्वामी के प्रति अपना सच्चा प्रेम प्रमाणित कर देता है और बाधाओं को पार कर परीक्षा में सफलता पूर्वक उत्तीर्ण हो जाता है तब प्रकृति मां उसकी सहायता के लिए आती हैं वह उसके मार्ग से हट जाती हैं और उसकी उन्नति व प्रगति के लिए बाधक नहीं रहती । मां उस की

समस्त सांसारिक आवश्यकताओं की देखभाल करती हैं और उनको पूरा करती हैं तब अभ्यासी परमपिता परमात्मा की ओर वेग से आगे बढ़ता है।

संत कबीर के कथन अनुसार त्रिकुटी के स्थान पर एक छोटा सा कुआं है जिसका मुंह नीचे की ओर है। यह अभ्यासी का लाक्षणिक चिन्ह है जो यह दर्शाता है कि मैं एक ऐसी स्थिति तक पहुंच गया है जहां उसको सांसारिक वस्तुओं की कोई इच्छा शेष नहीं रह गई है। उस कुएं से अमृत निकलता है जिसे वह पूर्ण संतोष के साथ ग्रहण करता है। वे अभ्यासी जिन्होनें सद्गुरु की शरण नहीं ली है या मिथ्या गुरु की शरण ली है वे इस ईश्वरीय परमानंद के लिए सदैव तरसते रहते हैं और उनके हृदय अंधकार से आच्छादित रहते हैं।

जो अभ्यासी त्रिकुटी मंडल तक पहुंच गया है वह इस भवसागर यह संसार जो दुख का सागर है इसमें वापस नहीं आता। ऐसे अभ्यर्थी इस स्थान से ऊपर की ओर ऊंचे ही ऊंचे चढ़ते चले जाते हैं।

त्रिकुटी का स्थान समस्त ज्ञान का भंडार है। प्रलय काल में से नीचे की सृष्टि का पूर्ण विनाश हो जाता है। जो आत्माएँ यहां तक पहुंच जाती हैं उदित सूर्य के समान सतत प्रगति करती हुई आगे बढ़ती जाती हैं। जो अभ्यासी त्रिकुटी स्थान तक पहुंच गया है वही सच्चा साधु है। वह ऐसा साधु है जिसने अपनी साधना तपस्या और आराधना पूरी कर ली है। इस स्थान तक पहुंचना अत्यंत कठिन है।

संत कबीर ने इस त्रिकुटी को एक दुर्ग की संज्ञा दी है। यहां पर पहुंचने के लिए अभ्यासी को नौ द्वार पार करने पड़ते हैं। दसवां द्वार त्रिकुटी है जिस पर ताला लगा है। यह ब्रह्मांड का स्थान है और इस के परे पार ब्रह्म है इस द्वार को खोलने का रहस्य एवं भेद केवल सतगुरु के पास ही है। केवल वही ताले को खोलने एवं शिष्य का ध्यान इस गुप्त भेद की ओर आकृष्ट करने में सक्षम होते हैं। जिस शिष्य पर गुरु की कृपा होती है उसके लिए वह गुरु द्वार खोल कर प्रत्यक्ष ढंग से दर्शन करा देते हैं। जिसमें सद्गुरु अपनी ही शक्ति से शिष्य को इस स्थिति तक उठा कर दर्शन करा देते हैं और शिष्य को किसी प्रकार का प्रयास नहीं करना पड़ता। इसके पश्चात जब शिष्य दशवें द्वार को खोलने का रहस्य सीख लेता है तब वह स्वयं के प्रयास से उस

स्थान तक पहुंच जाता है। सूफी लोग शिष्य के इस प्रयास को कसबी कहते हैं।

नौ द्वार जिनका संदर्भ ऊपर दिया गया है निम्नलिखित है

1. नेत्र - दो
2. कान - दो
3. नासिका - दो
4. मुख - एक
5. जननेंद्रिय - एक
6. गुदा - एक

कुल - नौ

कुछ संत 11 द्वारों का वर्णन करते हैं। वह नाभि का भी समावेश कर लेते हैं और इस प्रकार दसवां उसमें एक जोड़ कर त्रिकुटी 11वां द्वार बनता है।

स्थूल शरीर के अंदर से बाहर के मार्गों को द्वार कहते हैं। ऐसा कहते हैं कि जब आत्मा शरीर से विदा होती है तो इन्हीं में से एक द्वार में से प्रस्थान करती है। जहां तक संतों की बात है उनकी आत्मा दशवें द्वार त्रिकुटी के द्वारा ही विदा होती है। संत लोग इस दशवें द्वार को दशम द्वार कहते हैं।

प्रकृति के ऊपर और दशवें चक्र के पहले एक और स्थान है जिसे शून्य कहते हैं इसको अमृत सर भी कहते हैं। जिसका अर्थ है अमृत का सरोवर या सागर। इसको मानसरोवर भी कहते हैं। जहां राजहंस निवास करते हैं और मोतियों का आहार करते हैं। इन राज हंसों की विशेषता यह है कि यदि उनको दूध और पानी का मिश्रण दिया जाए तो वह पानी छोड़ देते हैं और दूध दूध पी लेते हैं। जब अभ्यासी हंस व परमहंस के स्थान पर पहुंच जाता है तो उसमें विवेक उत्पन्न हो जाता है जिसके द्वारा वह केवल यथार्थ को ही स्वीकार करता है जो वास्तविक और यथार्थ नहीं है उसे वह छोड़ देता है। हंस द्वारा दूध और पानी को अलग करने का यही अर्थ है। इस स्थान पर पहुंच जाने के पश्चात आत्मा उन आत्माओं से मिल

जाती है जो स्वप्रमाणित की स्थिति तक पहुंच चुके हैं। उसको अमृत पान कराया जाता है और जब वह अमृत प्राप्त कर लेता है वह निर्मल हो जाता है और माया के बंधनों से मुक्त हो जाता है। अब वह समय है कि वह सच्चे ज्ञान को प्राप्त करता है। उसे अब यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है कि परमात्मा ही सर्वस्व है और उसके दर्शनों के लिए अधीर होकर उन्हीं में समाधिस्थ हो जाता है।

9. शून्य

त्रिकुटी के ऊपर नीचे से नवें चक्र को शून्य चक्र कहते हैं। शून्य का अर्थ है तत्व रहित अर्थात खाली स्थान। 6 पंखुड़ियों का कमल है इस स्थान की ध्वनि किंगरी सारंग है। यह ध्वनि बड़ी आकर्षक होती है। यह ध्वनि यहां निरंतर सुनाई देती है। इस स्थान का मंत्र ररंकार है। यह आत्मा की चमक इतनी अधिक बढ़ जाती है जैसे बारह सूर्य प्रकाशित हों।

सूफी संत इस स्थिति को खला अर्थात खाली कहते हैं। उन्होंने इसकी व्याख्या अदम कह कर दी है। तब भी शून्य की स्थिति का अस्तित्व है परंतु यह अस्तित्व के ज्ञान से रहित है। इस को व्यक्त करने के लिए शून्य शब्द का उपयोग अति उपयुक्त है। इसके अन्य वैकल्पिक नाम भी उतने ही उपयुक्त हैं।

यद्यपि आत्मा को इस स्थान पर पहुंचकर विशेष ज्ञान और विवेक से पूर्णता हो जाती है तो भी वह ऊपर की ओर जाने में असमर्थ रहती है। इसके आगे के मंडल महा शून्य तक पहुंचने के लिए सद्गुरु की सहायता परम आवश्यक है अन्यथा वहां पहुंचना संभव नहीं है।

10. महाशून्य

शून्य से आगे और नीचे के दशवें चक्र को महाशून्य कहते हैं। इस स्थान का कमल 8 पंखुड़ियों का है। जहां पर 2 द्वीप भी होते हैं। संतों ने बाईं ओर के 10 पंखुड़ियों वाले द्वीप को सहज और दूसरे को अचिंत का नाम प्रदान किया है। इस स्थान पर प्रकाश नहीं होता। पर जो आत्माएँ यहां निवास करती हैं उनमें प्रत्येक

का स्वयं का प्रकाश बारह सूर्य के प्रकाश के समान होता है। यहां कलंक रहित शुद्ध माया का शासन होता है। इस स्थान का सौंदर्य इतना विशिष्ट होता है की आत्मा इससे विलग नहीं होना चाहती है। जब तक अभ्यासी अपने अस्तित्व को सद्गुरु में समाविष्ट नहीं कर देता है और अपने को शब्द अर्थात मंत्र के आकार में परिवर्तित नहीं कर लेता है ऊपर की ओर नहीं बढ़ सकता। जब सद्गुरु कृपा करते हैं तो वह स्वयं ही अभ्यासी में समाविष्ट होकर उसको शब्द के रूप में परिवर्तित कर देते हैं उसके पश्चात वे उसे ऊपरी मंडल में पहुंचने का मार्गदर्शन करते हैं।

अनेक ऋषि और मुनियों ने पार ब्रह्म की स्थिति को प्राप्त किया पर इसके आगे मार्गदर्शन की कमी के कारण पार ब्रह्म की स्थिति के ऊपर नहीं पहुंच सके। उन्हें यहां किसी प्रकार की असुविधा नहीं है और इस स्थान के सौंदर्य से अति प्रसन्न भी हैं पर वे इस से आगे जाने में असमर्थ हैं। उनके गुरु उनका केवल यही तक मार्गदर्शन कर सके क्योंकि वह स्वयं ही इस स्थिति से आगे बढ़ने से अनभिज्ञ थे। इसलिए ऐसे गुरु की शरण लेनी चाहिए जिसकी पहुंच सच खंड अर्थात बारहवें स्थान तक हो।

सहज और अचिंत द्वीपों के अतिरिक्त पांच बड़े-बड़े गोलाकार स्थल और भी हैं इनमें से प्रत्येक इस भूमंडल जिसे हम मृत्युलोक कहते हैं से बहुत बड़े हैं। उन पांच स्थानों की तुलना में है मृत्युलोक एक बूंद के समान है। इन पांचों मंडलों में से प्रत्येक में से एक ब्रह्म अर्थात निदेशक होता है। इन 5 मंडलों के अतिरिक्त 4 मंडल और भी हैं जिनका रहस्य कुछ कारणों वश संतों द्वारा अभी तक प्रकट नहीं हो पाया है। कोई अभ्यासी जो इस स्थिति तक पहुंच जाता है खुद ही उनके संबंध में जानकारी प्राप्त कर लेता है। जो आत्माएँ इन स्थलों में निवास करती हैं उन्हें बंदीवान कहते हैं। जैसा ऊपर व्यक्त किया गया है आत्मा को यहां किसी प्रकार की असुविधा नहीं है पर वे इससे ऊपर जाने में असमर्थ हैं। वह उन आत्माओं से जिनको संतों ने मृत्युलोक से यहां तक पहुंचा दिया है, विनय और प्रार्थना करती रहती हैं संत लोग सब के ज्ञान और उन्नति में सुधार करें। संत लोग सर्वशक्तिमान हैं अगर वह कृपा करें तो इन आत्माओं को ऊपर ले जाने में सक्षम हैं।

11. भंवर गुफा

महाशून्य से अगला और नीचे से ग्यारहवाँ चक्र भंवर गुफा अर्थात चक्करदार गुफा है। सच खंड में प्रवेश करने के लिए यह प्रधान द्वार है। संत लोग इसको सोऽहं अर्थात मैं वही हूं का मंडल कहते हैं। इस महासागर परमपिता परमात्मा को देख कर बूंद के समान आत्मा ऐसा अनुभव करती है कि वह भी उसी परमात्मा का अंश है। सूफी संत इस मंडल को अनाहू कहते हैं जिसका अर्थ भी सोऽहं अर्थात में वही हूं है। यहां पर बांसुरी की मधुर ध्वनि सदा सुनाई देती है।

यह महामाया अर्थात महान प्रकृति मां का स्थान है। मां प्रकृति एक बार फिर परीक्षा लेती है। आत्मा जो परमात्मा का ही अंश है परमात्मा में समाविष्ट होने की अभिलाषा रखती है उस परमपिता परमात्मा में जो इसकी उत्पत्ति का स्रोत है। यदि यहां सूक्ष्म से सूक्ष्म असमानता भी शेष रह जाती है तो आत्मा सीमा को पार नहीं कर सकती। यहां पर भी इस सीमा को पार कर सच खंड तक पहुंचने के लिए सतगुरु की दया और कृपा की विशेष आवश्यकता है। बंधनमुक्त आत्मा माया के अनुराग रहित यहां स्वतंत्रता एवं सुख से विचरती है यहां सभी सद्गुरु दैवी दरबार लगाते हैं।

संत कबीर के कथन अनुसार इस क्षेत्र में 88 हजार स्थल हैं जहां अनेक श्रद्धालु निवास करते हैं। यहां आत्माओं की तुलना हीरा और पन्ना से की जाती है जो प्रकाश फेंकते हैं। तुलना करने के लिए इस पृथ्वी पर हीरा और पन्ना से अधिक कोई मूल्यवान वस्तु नहीं है। यहां पर आत्मा का अस्तित्व तेजस्वी एवं स्वयं प्रकाशित होता है। शुद्ध एवं निर्लिप्त होने के कारण यह अपने को सृष्टिकर्ता की ही छवि का अनुमान करती है और अनुभव करती है।

12. सत लोक सच खंड

भंवर गुफा से अगला और नीचे से बारहवाँ चक्र सत लोक या सच खंड है। इन दोनों शब्दों का अर्थ सत्य की भूमि है। सूफी संत इसे मुकाम ए हक कहते हैं जिसका भी अर्थ वही है। सत लोक की ना किसी से तुलना की जा सकती है और

ना इस स्थान का सौंदर्य महत्व व श्रेष्ठता का वर्णन शब्दों में किया जा सकता है।

यहां आत्मा के प्रकाश में इतनी वृद्धि हो जाती है मानो 16 सूर्य एक साथ प्रकाश कर रहे हो। यहां वीणा की ध्वनि सुनाई देती है। इसका स्वर इतना मधुर और सुरीला होता है कि इसकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती। इसकी मधुरता उपमा रहित है। गुरु नानक और गुरु नामदेव जैसे संतों ने इस स्थान को सृष्टि के सच्चे स्वामी के दरबार की संज्ञा दी है और इस को पूर्ण सत्यता का स्थल सत लोक या सत्य धाम बताया है।

जन्म और मृत्यु तथा सुख और दुख के लिए यहां कोई स्थान नहीं है आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाती है। परंतु संत कहते हैं कि इतनी एकता के उपरांत भी आत्मा का बंधन रहित अस्तित्व विद्यमान रहता है। संतों ने इस स्थान के देवता को सत पुरुष कहा है जिसका अर्थ है कि वे देवता जो सदा विद्यमान रहने वाला है। इस सच्चे देवता के एक रोम से जितना प्रकाश निकलता है वह करोड़ों सूर्य और करोड़ों चंद्रमाओं के प्रकाश से कहीं अधिक होता है।

हंस अर्थात बंधन रहित मुक्त आत्माएँ सदैव परमात्मा की सेवा में उपस्थित रहती हैं। जो आत्मा इस स्थान से मृत्युलोक अर्थात पृथ्वी पर अन्य आत्माओं को मुक्त करने आते हैं वही सच्चे संत होते हैं। वह स्वयं मुक्त आत्माएँ होती हैं और दूसरी आत्माओं को मुक्ति दिलाने में सक्षम होती हैं। ऐसे गुरु जब अपने शिष्य पर दया और कृपा करते हैं तब शिष्य के प्रति विशेष अनुग्रह से उच्च स्थान के दर्शन कराने हेतु उसे ऊपर उठा लेते हैं। इस प्रकार दर्शन प्राप्त होने को वहबी मार्ग कहते हैं। शिष्य जब इस स्थिति तक कसबी मार्ग से पहुँचते हैं अर्थात अपने स्वयं के प्रयास से पहुँचते हैं तब वह अन्य लोगों को भी इस स्थिति तक पहुंचाने में सक्षम होते हैं और स्वयं सद्गुरु की स्थिति तक पहुंच जाते हैं।

चतुर्थ अध्याय

ब्रह्मांड और पारब्रह्म के अंतिम 6 चक्र

संतों ने नीचे के चक्रों का विस्तृत वर्णन किया है तो भी तृतीय अध्याय के अंतिम चक्रों का इतना स्पष्ट और विस्तृत वर्णन नहीं कर पाए हैं जितना कि इनके पहले के चक्रों का किया गया है। इसका और अधिक विस्तार से वर्णन तभी संभव हो सकता था जब इस को व्यक्त करने के लिए हमारी भाषा में उपयुक्त शब्द होते। ब्रह्मांड और पारब्रह्म के तेरहवें, चौदहवें और पन्द्रहवें चक्रों का वर्णन, भाषा की असमर्थता के कारण और भी सूक्ष्म है। संत लोग अंतिम तीन चक्रों, सोलहवें, सत्रहवें और अठारहवें में चक्र के संबंध में कुछ भी वर्णन देने में असमर्थ रहे हैं और उन्होंने इन चक्रों को परम चक्रों की परम गोपनीयता प्रदान कर दी है।

13. अलख लोक

सच खंड के ठीक ऊपर वाला तेरहवां चक्र अलख लोग है। अलख शब्द का अर्थ जो दिखाई न देता है। यह अलख पुरुष का स्थान है। जब अभ्यासी सचखंड तक पहुंच जाता है, तब परमात्मा उसे शक्ति प्रदान कर ऊपर की ओर भेज देता है। अलख पुरुष का प्रकाश इतना चमकीला होता है कि सैकड़ों सूर्य व चंद्रमा के प्रकाश की तुलना में उसके प्रभा व चमक अलख पुरुष के केवल एक बाल के समान भी नहीं होती।

14 . अगम लोक

अलख लोग के ऊपर चौदहवाँ लोक अगम लोक है। अगम का अर्थ है कि वह स्थान जहां पहुंचा न जा सकता हो। इस स्थान के देवता अगम पुरुष हैं। संत लोग कहते हैं यदि दस सहस्त्र करोड़ सूर्य और चंद्र एक साथ प्रकाशित हों तो भी प्रथम पुरुष के एक बाल से उत्पन्न प्रकाश उनकी तुलना में कहीं अधिक है।

15 . अकह लोक

अगम लोक के ऊपर पन्द्रहवाँ चक्र अकह लोक है। शब्द अकह के अर्थ हैं, अवर्णनीय। यह अकह पुरुष या अनामी पुरुष का निवास है। अकह का अर्थ है जो वर्णन न किया जा सके और अनामी का अर्थ है कि जिसका कोई नाम न हो। इस स्थिति को वही जान सकता है और अनुभव कर सकता है जो अकह लोक तक पहुंच गया हो। इसका न आरंभ है और न कोई अंत।

सोलहवाँ, सत्रहवाँ, और अठारहवाँ चक्र

जैसा की पहले व्यक्त किया जा चुका है, आगे के तीन मंडल अर्थात् सोलहवाँ, सत्रहवाँ, और अठारहवाँ स्थान, संतों द्वारा परम गोपनीय कहे गए हैं। उनके संबंध में कोई भी विवरण उपलब्ध नहीं है।

द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अध्याय में चक्रों का विस्तृत विवरण देने का प्रयास किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए चक्र और मंडलों का पूर्ण विवरण चक्र तालिका के रूप में संकलित करके इस चतुर्थ अध्याय के अंत में संलग्न कर दिया गया है।

क्रम संख्या	कमल तथा चक्र का नाम	स्थिति	पंखुड़ियाँ	रंग	जाप मंत्र	तत्व	कार्य	देवता	मंत्र	विवरण
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11
1	गुदा मूलाधार चक्र	गुदा	4	लाल	क्लीं	पृथ्वी मिट्टी	बाहर निकालना	गणेश तथा उनकी दो भार्याएं ऋद्धि सिद्धि	ॐ भूः	मंत्र क्लीं का जाप करने से जब ये चक्र सिद्ध हो जाता है तो भगवान गणेश, उनकी दोनों पत्नियों ऋद्धि सिद्धि ये सब भी सिद्ध हो जाते हैं। अभ्यासी का शुभारंभ हो जाता है।
2	इंद्रिय अथवा स्वादु चक्र	लिंग	6	सफेदी मिला हल्का काला	ॐ	जल	उत्पत्ति	भगवान ब्रह्मा तथा सावित्री	ॐ भुवः	भगवान ब्रह्मा उत्पत्ति के देवता हैं। जब ॐ के जप से यह चक्र सिद्ध हो जाता है तो ब्रह्मचर्य भी सध जाता है। जिस से ऊपर की चढ़ाई के लिए शक्ति मिल जाती है। जब कुण्डलिनी जो इन दोनों चक्रों के ऊपर अंतड़ियों में विद्यमान है, इन दोनों चक्रों के सिद्ध होने पर जागृत होती है तब सारी सिद्धियां आप ही वश में हो जाती हैं।
3	नाभि मणिपुर चक्र	नाभि	8	हल्का नीला	ह्रीं	अग्नि	पालन पोषण	विष्णु तथा लक्ष्मी	ॐ स्वः	आंतों की कुंडली शेषनाग का प्रतीक है जिस पर भगवान विष्णु विश्राम करते हैं और उनकी भार्या लक्ष्मी सृष्टि (शरीर) का पालन करती हैं। इस कमल में चकाचौंध करने वाला प्रकाश जगमगाता है। मानव के अतिरिक्त सारे जीव इन्हीं तीन चक्रों में रहकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इसके ऊपर नहीं जा पाते।
4	हृदय चक्र	हृदय	12	नीला	सोऽहं	वायु	नाश करना, मिटाना	शिव तथा गौरी	ॐ महः	यहां सोऽहं का जाप करने से यह चक्र जागृत हो जाता है। इस चक्र को जय करने से सारी ज्ञानेंद्रियाँ वश में हो जाती हैं। इस शक्ति से आगे

										के कार्य के लिए मन को एकाग्र करने में सहायता मिलती है।
5	कंठ चक्र	कंठ	16	गहरा नीला	श्रीं	आकाश	शब्द	दुर्गा अविद्या	ॐ जनः	भगवती दुर्गा, ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन तीनों की माता है, इन्हें अविद्या या मलिन माया भी कहते हैं। सूफियों में इस चक्र का नाम अक्फ़ा-अक्फ़ा है।
6	आज्ञा चक्र	भौहों के बीच	2	गहरा भूरा	अनहद	-	-		ॐ तपः	इस स्थान को शिव नेत्र अथवा तीसरा तिल भी कहते हैं। यह आत्मा का स्थान है। जागृत अवस्था में आत्मा यहां निवास करती है तथा यहां से शरीर के नीचे लोकों को शक्ति देती हैं। प्राणायाम के योगियों की पहुंच का यही अंतिम स्थान है। इसके आगे प्राण (वायु) चिदाकाश में समा जाते हैं और आगे नहीं जा पाता। सूफी इस स्थान को नुक्त-ए-सुवेदा कहते हैं। पिण्डी मन की भी सबसे ऊंची पहुंच यहीं समाप्त हो जाती है। यहां से उसका स्थान ब्रह्मांडी मन ले लेता है। यहां स्थूल समाप्त हो जाता है तथा आगे केवल सूक्ष्म व्याप्त है।
7	सहस्त्र दल कमल अथवा विराट चक्र	सिर में आज्ञा चक्र से ऊपर	1000	सफेद चमकदार	घंटा ध्वनि	सूक्ष्म पृथ्वी तत्व	-	त्रिलोकीनाथ ज्योति निरंजन	-	यहां आत्मा को तीनों लोकों (हृदय, नाभि तथा इंद्रिय) के स्वामी भगवान त्रिलोकीनाथ के दर्शन होते हैं। उन्हें ज्योति निरंजन भी कहते हैं। अनेक धर्मानुयायी इस स्थान पर पहुंचकर अत्यधिक प्रकाश देख कर संतुष्ट हो गए तथा इसी को अंतिम स्थान समझ कर और आगे बढ़ने का विचार त्याग दिया।
8	त्रिकुटी	सिर में	3	सहस्त्रद	हल्की	जल अग्नि	-	-	-	इसके थोड़ा ऊपर आगे जाने के लिए एक बहुत

	अथवा ब्रह्मचक्र	सहस्त्रदल से कुछ ऊपर		ल से भी अधिक प्रकाश	मधुर बादल की गर्जना जिसमें ॐ शब्द सुनाई पड़ता है	तथा वायु का सूक्ष्म रूप				तंग रास्ता पार करना पड़ता है जिसे बंकनाल कहते हैं और जिसके लिए पिण्डी मन जो हाथी के समान खड़ा है, उसको सूक्ष्म बनाकर ब्रह्मांड मन बनाना पड़ता है। यहां से ब्रह्मांड आरंभ होता है। सूफी लोग इसे **आलम-ए-जबरूत** कहते हैं।
9	शून्य चक्र	त्रिकुटी से कुछ ऊपर	6	त्रिकुटी से भी अधिक प्रकाश	ओंकार	स्थूल सूक्ष्म तथा कारण से भी ऊंचा	-	-	-	त्रिकोण के आकार का यह परब्रह्म का स्थान है। आत्मा इस स्थान पर बहुत आनंद का अनुभव करती है और यहां कुछ समय आराम से रहती है। यह स्थान योगियों का नहीं है परंतु संतों का है। सूफी लोग इसे **मुसलसी** कहते हैं और आल-ए-लाहूत भी। यह पारब्रह्म के भी आगे का स्थान है जहां सुरत कारण से भी आगे चली जाती है। इसे मानसरोवर और अमृतसर भी कहते हैं। जहां अमृत बहता रहता है और हंस रूपी आत्मायें उसको पीकर प्राप्त होती हैं। इसे संत लोग दशम द्वार भी कहते हैं। यहां आत्मा को बहुत सुख मिलता है और वह आनंद से नाचती है। यह आनंद वर्णन में नहीं आ सकता।
10	महा शून्य	शून्य से कुछ ऊपर	8	घोर अंधकार आत्माएँ निजी प्रकाश में रहती हैं	-	यह भी परब्रह्म अथवा शब्दब्रह्म का स्थान है	-	-	-	आत्मा को यहां सब प्रकार का आराम है परंतु उसमें यहां से आगे जाने की सामर्थ्य नहीं है। सद्गुरु के द्वारा ही ऊपर ले जाया जाता है। बहुत सी मुक्त आत्मायें जिन्हें यहां से ऊपर ले जाने वाले गुरु नहीं मिले, यहां निवास करती हैं और ऊपर ले जाने वाली आत्माओं से प्रार्थना करती हैं कि वह अपने सद्गुरु देव से उन्हें भी ऊपर ले जाने

										के लिए निवेदन करें। संतों में उन्हें भी यहां से मुक्त कराने की क्षमता होती है यहां चार स्थान और भी ध्यान करने के हैं, जिनका भेद संतों ने खोलकर नहीं बताया है। जो आत्मायें वहां पहुंचेगी वे स्वयं ही उनके विषय में जान लेंगी। इस स्थान का नाम सूफी संत **आलम-ए-लाहूत** बतलाते हैं।
11	भंवरगुफा	महाशून्य से कुछ ऊपर	-	-	सोऽहं अथवा अनाह सूफी नाम की मीठी ध्वनि गूंजती है	-	-	-	-	यहां पहुंचने वाली आत्माएँ परमानंद में झूमती रहती हैं और पवित्र सृष्टिकर्ता के दर्शनों के लिए आतुर रहती हैं। यहां जो सुगंधी फैली रहती है वह बहुत ही आकर्षक और प्रसन्न करने वाली होती है। इस स्थान का सूफी नाम और **आलम-ए-हूत अलाहूत** है।
12	सचखंड अथवा सतलोक	भंवरगुफा से कुछ ऊपर	-	पूर्ण प्रकाश का स्थान केवल सच्चे मालिक का देश	वीणा की मधुर गूंज सत् सत् सूफीयों के अनुसार हक़ हक़	-	-	-	-	यह स्थान सत स्वरूप, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी सत्यपुरुष का है जो केवल, नित्य और सत्य है तथा सारी सृष्टि का रचयिता है, स्वामी है। यह स्थान केवल परमात्मा का है और यहां माया लेशमात्र भी नहीं है। आत्माओं को यहां शुद्ध अमृत पिलाया जाता है और वह बहुत सुखी हैं। उन्हें हंस कहा जाता है। यहां से यह ऊपर के लोकों में भी जा सकती हैं। उसमें सत्पुरुष सहायता करते हैं और यही से नीचे उतर कर, मालिक के दिए हुए अपने कार्य करके वापस वहीं चले जाते हैं। सूफी इस स्थान को **आलम-ए-हूत** कहते हैं।

पंचम अध्याय

चढ़ाव की गति

संतों के कथनानुसार, पहले चक्र से अठारहवें चक्र तक का समस्त सृष्टि निर्माण मनुष्य शरीर में विद्यमान है। सद्गुरु के चरणों में पूर्ण आत्मसमर्पण से मनुष्य अपने जीवन काल में ही उच्चतम स्थिति प्राप्त कर सकता है । सतगुरु की आवश्यकता तो स्पष्ट है क्योंकि उन्होंने स्वयं इन स्थितियों में से होते हुए सबसे ऊंची स्थिति प्राप्त कर ली है और वह मंडलों के रहस्य विभेद से भली भांति अवगत हैं। वह साधक को भी सबसे ऊंचे मंडल तक पहुंचाने में सक्षम है एवं समर्थ हैं। केवल वे संत ही इस रहस्य के ज्ञाता गुरु हैं। जब तक इस विद्या का ज्ञान उनसे प्राप्त नहीं किया जाता तब तक उच्च मंडलों में प्रवेश पाना संभव नहीं है।

सृष्टि कर्ता की आदि शक्ति माया उच्च कोटि की शिल्पी है। उसने मानव शरीर का निर्माण अत्यंत निपुणता और बुद्धिमत्ता से ऐसे ढंग से किया है कि ब्रह्मांड और परब्रह्म के छह चक्रों की छाया अंड के नीचे वाले 6 चक्रों पर पड़ती है। यही छाया अंड के 6 चक्रों से पुनः परिवर्तित होकर पिंड अर्थात स्थूल शरीर के 6 चक्रों को प्रतिबिंबित करती है और उन्हें सक्रियता प्रदान करती है। इस प्रकार नीचे के 6 चक्रों को ऊपर के 6 चक्रों से संचालन शक्ति प्राप्त हो जाती है।

संतों के अनुसार, संत मत में ऊपर की गति अर्थात संतों के ऊपर जाने की गति चार प्रकार की कही गई है-

1. पिपीलिका (चींटी) गति
2. मकड़ी गति
3. मीन (मछली) गति
4. विहंगम (पक्षी) गति

आत्मा को पिंड के नीचे के चक्रों से प्रस्थान कर ऊपर जाने के लिए अधिक समय लगता है और अधिक शक्ति का भी उपयोग करना पड़ता है। इसका

कारण यह है कि मनुष्य का मन सांसारिक राग, देश के बंधनों से पूरी तरह लिप्त रहता है। यह बंधन साधक को परमार्थ के पथ पर, उच्चतम लक्ष्य की ओर बढ़ने में बाधक होते हैं। जब आत्मा ऊपर जाने का प्रयास करती है, तभी विघ्नों की आंधी उसके प्रयास को विफल कर देती है। वह पुनः प्रयास करती है और फिर दोबारा असफल रहती है। इस प्रकार ऊपर चढ़ने और नीचे गिरने का क्रम चलता रहता है। बाद में सतगुरु की दया और कृपा से वह एक न एक दिन नीचे के चक्रों को पार कर लेती है। चढ़ने की धीमी गति और बार-बार गिरने के उपरांत भी वह लक्ष्य के प्रति अपने साहस को नहीं खोती और पुनः-पुनः चढ़ने का प्रयास करती है। इसी कारण इस पथ का नाम पिपीलिका मार्ग कहा गया है।

दूसरा मार्ग, मकड़ी मार्ग है। जब आत्मा पिंड के 6 चक्रों को पार कर लेती है, तब जैसे मकड़ी अपने मुख से उत्पन्न धागे यानी तंतु के सहारे ऊपर से नीचे की ओर आती है और अपने आखेट (शिकार) को लेकर उसी धागे के सहारे पुनः ऊपर चढ़ जाती है। नीचे के 6 चक्रों को पिपीलिका मार्ग से पार करने के उपरांत साधक की स्थिति भी ऐसी ही होती है। इस स्थिति में सांसारिक बंधन उसे इतनी दृढ़ता से नहीं बांध पाते हैं और वह अपने कार्य में स्वतंत्र हो जाती है। आज्ञा चक्र से ऊपर त्रिकुटी मार्ग तक, नीचे से सातवाँ और आठवाँ चक्र मकड़ी मार्ग में आते हैं।

त्रिकुटी पहुंचने पर चढ़ाव की गति मछली के समान हो जाती हैं। इसको मीन मार्ग कहते हैं। मछली जल की धारा के विपरीत मीलों तैरती चली जाती है। जल इसका तत्व है। इसे जल से विशेष प्रेम है। इसी प्रकार आत्मा भी मछली की गति से ऊपर चढ़ती है। पर वह गुरु की सहायता एवं शब्द की धारा द्वारा अपने लक्ष्य की ओर जाती है। आत्मा जब तक दशम द्वार पार नहीं कर लेती, उसकी यही गति रहती है।

दशम द्वार के आगे, आत्मा के चलने की गति विहंगम हो जाती है। विहंगम पक्षी को कहते हैं। संतों का निवास सचखंड है जिसे 'दयाल देश भी कहते हैं। संसार में अपना दायित्व निभाने के लिए, संतों में अपनी इच्छा अनुसार नीचे उतरने की शक्ति होती है। कार्य संपन्न करने के पश्चात वे अपने निवास को वापस चले

जाते हैं। पक्षी जिस प्रकार पर्वत शिखर से उड़ कर नीचे आता है और पुनः अपने पर्वत शिखर पर वापस चला जाता है।

संत कबीर उच्च शिखर के उन प्रथम संतों में से एक हैं जिन्होंने आत्मा के उभार की स्थितियों को सर्वोच्च आध्यात्मिक स्तर तक स्पष्ट कर अभिव्यक्त किया है। उनके अनुसार संतों (सद्गुरु) की गति व काल पक्षी के समान होती है। उनके निवास का स्थान पिंड (स्थूल) एवं अंड (सूक्ष्म) के ऊपर होता है। उनका मार्ग पवित्र नाम शब्द होता है। सद्गुरु उन्हें सचखंड के द्वार की कुंजी दे देते हैं और उस में प्रवेश करने के लिए, उस के कपाट पूरे खुल जाते हैं।

छठा अध्याय

उपसंहार

पिछले अध्यायों में आत्मा के विभिन्न स्थितियों के चुनाव संबंधी वर्णन से यह स्पष्ट हो ही गया होगा कि इस भौतिक जगत में आत्मा के अपने वर्तमान अस्तित्व के अति सामान्य आकार जीवन को सूक्ष्म एवं अति भाववाचक सूक्ष्म (कारण) स्थितियों तक चढ़ने और चेतना की उच्च स्थिति तक पहुंचने का मार्ग सरल एवं सुगम नहीं है । इन विभिन्न चढ़ाव की गोपनीय स्थितियों से अवगत मार्गदर्शक के सहयोग के बिना, इनका प्राप्त कर पाना संभव नहीं है । केवल उच्च संतों को ही इस रहस्य का ज्ञान होता है । वह इस मार्ग से पूर्णतया अवगत होते हैं । वही साधक को चेतना के उच्चतम शिखर तक पहुंचाने में और उसके मार्गदर्शन में समर्थ हैं । इसी कारण साधक के लिए मार्गदर्शक सद्गुरु की कृपा प्राप्त करना परम आवश्यक है । इन स्थितियों की ऊंचाइयों तक पहुंचना आवश्यक है । मंडलों के उतार चढ़ाव, ऊपर चढ़ने का साधन और मार्ग का भी हमें ज्ञान नहीं है । इसी कारण हमें इस विषय के किसी विशेषज्ञ की सहायता लेनी अनिवार्य है । संतों ने ऐसे ही विशेषज्ञ को सद्गुरु कहा है ।

हमारे पाठकों ने देखा होगा कि प्रत्येक बार जब हम इस संसार में आते हैं, चाहे वह कीड़ा हो, रेंगने वाला जंतु हो, पशु, पक्षी या मनुष्य हो, जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था रोगों के दुख और क्लेश की निर्धारित पुनरावृत्ति से छुटकारा पाना हम सबके लिए कितना आवश्यक है । जब तक आत्मा का स्तर सामान्य व सूक्ष्म स्थिति से ऊपर नहीं उठता, इन दुखों का निवारण संभव नहीं है । पर, इस प्रकार सामान्य स्तर से सूक्ष्म व ऊपर की स्थितियों पर उठना मनुष्य योनि में ही संभव है । मनुष्य योनि की अतिरिक्त समस्त योनियों भोग योनियों हैं । उनमें आत्मा को अपने पिछले कर्मों के फल स्वरूप कष्ट भोगने पड़ते हैं । वह अपने भाग्य को सुधारने की दिशा में नितांत असहाय एवं असमर्थ होते हैं । मनुष्य योनि कर्म योनि भी है और भोग योनि भी, जिसके फलस्वरूप वह अपने अच्छे और बुरे कर्मों के परिणाम का आनंद व कष्ट लेता है । यदि कोई अपना वर्तमान समय नष्ट कर देता है और मनुष्य

शरीर का अपने नियत समय के अनुसार नाश हो जाता है जैसा कि अधिकतर मनुष्यों के साथ होता है तो पुनः मनुष्य शरीर पाने का अवसर सैंकड़ों व हजारों वर्षों तक निरंतर कष्ट भोगने के पश्चात ही आता है। फिर जब कभी उसे मनुष्य शरीर प्राप्त करने का सौभाग्य मिले तब सामान्य स्तर से ऊपर उठाने हेतु परिस्थितियां अनुकूल हो या प्रतिकूल, यह अनिश्चित है। संत लोग इसीलिए प्रत्येक मनुष्य को, चाहे वह किसी जाति, धर्म, अथवा राष्ट्रीयता आदि का हो, यही उपदेश देते हैं कि उसे अथवा अपना अमूल्य समय जो उसे अभी उपलब्ध है, तनिक भी नष्ट नहीं करना चाहिए। उसे स्थूल मंडल से ऊपर जाने के क्रम में पुनरागमन से छुटकारा पा लेना चाहिए। इस ध्येय की प्राप्ति के लिए एक सुयोग्य मार्गदर्शक, सद्गुरु की खोज परम आवश्यक है।

संत कहते हैं कि यदि साधक सच्चे हृदय से, दृढ़ संकल्प होकर सतगुरु की खोज करें तो परमपिता परमात्मा भी उसकी सहायता करते हैं। उसे सद्गुरु उपलब्ध हो जाता है। जब सद्गुरु प्राप्त हो जाता है और स्वीकार कर लिया जाता है तब साधक को उसी की शिक्षा और मार्गदर्शन के अनुसार कार्य करना चाहिए। उसे अपने सतगुरु पर ही निर्भर रहना होगा। उन्हें उनके मार्गदर्शन के अनुसार चलना होगा ।सामान्य स्तर से ऊपर जाने के मार्ग का ज्ञान केवल सद्गुरु को ही है। यह ज्ञान न तो साधक को विदित है और न किसी पुस्तक में उपलब्ध है। सद्गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण की अंतिम स्थिति स्वतः ही आ जाएगी और साधक को पहले से ही पूर्ण विश्वास हो जाएगा कि यह समर्पण उसे अमूल्य पारितोषिक प्रदान करेगा।

अतीत में उच्च योग्यता और शक्ति वाले सामर्थ्यवान संत हुए हैं जिन्होनें मनुष्य को नीचे के स्तर से उठा कर चेतना के सर्वोच्च स्तर तक पहुंचाया है, किंतु वह अब हमारे सामने स्थूल शरीर में उपस्थित नहीं हैं। उनके व्यक्तिगत मार्गदर्शन नए साधकों के लिए उपलब्ध नहीं है तथापि ऐसे संत जो सद्गुरु की योग्यता के हैं, अभी भी इस पृथ्वी पर सदा विचरण करते रहते हैं। ऐसे मनुष्य शरीर धारण किए हुए सद्गुरु को खोजना और उन्हें स्वीकार करना परम आवश्यक है। वे ही आत्मा के पवित्र चढ़ाव का पथ प्रदर्शन कर सकने में सक्षम हैं। यह मार्गदर्शन नए व्यक्तियों को उन सद्गुरु से प्राप्त नहीं हो सकता जो इस संसार में उपस्थित नहीं हैं।

संस्कार प्रत्येक जन के एक दूसरे से भिन्न होते हैं। जिन परिस्थितियों में वे रहते हैं, वह भी एक समान नहीं होती हैं। इस कारण यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक साधक अपने इस छोटे से जीवन काल में, स्थूल, सूक्ष्म और कारण, समस्त श्रेणियाँ को पार कर ले। इस परमार्थ के सर्वोच्च लक्ष्य के मार्ग में अनंत विघ्न बाधाएँ और प्रतिबंध हैं। पर यदि सद्गुरु मिल जाता है और वह शिष्य को स्वीकार कर लेता है तो साधक को फिर इस संसार में भोग भोगने के लिए बार-बार नहीं आना पड़ेगा। यह तभी संभव है जब वह, प्रथम 6 चक्रों को पार करके आज्ञाचक्र (जो नीचे से छठा है) के ऊपर पहुंच जाए। इससे आगे की यात्रा के लिए उसे वही सद्गुरु उपलब्ध होगा जो उसे अंतिम स्थिति तक पहुंचा देगा। यदि उसका स्थूल शरीर शांत हो गया है तो जो कार्य शरीर रहते, दिनों और महीनों में पूरा हो सकता है, उसमें फिर वर्षों लग सकते हैं।

अंत में एक महत्वपूर्ण व आवश्यक स्थिति को भी सावधानी से ध्यान में रखना चाहिए। जिन मंडलों की गणना अध्याय 2 से 4 तक की गई है वे चढ़ाव के सामान्य मंडल हैं तथा उनका जो वर्णन दिया गया है, वह पहले के संतों के अनुभव पर आधारित है। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक साधक इन समस्त मंडलों को ठीक इसी प्रकार पार करें। यह पूर्णतया सद्गुरु की इच्छा पर निर्भर होता है कि वह साधकों को समस्त मंडलों की दिव्य दृष्टि दे या किसी एक मंडल या और अधिक मंडलों को छोड़कर अपनी शक्ति इच्छा के अनुसार, उसे सर्वोच्च स्तर तक पहुंचा दें। पर, जिनको सद्गुरु का कार्यभार सौंपा जाता है, उनको समस्त मंडलों की जानकारी होना आवश्यक है जिससे कि वह विभिन्न योग्यता के साधकों को उनकी आवश्यकता के अनुरूप सभी मंडलों के विकास में सहायता प्रदान कर सकें।

यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि प्रत्येक साधक के लिए सद्गुरु का व्यक्तिगत संपर्क एवं मार्गदर्शन आवश्यक है। यद्यपि सद्गुरु की सामर्थ्य और योग्यता पर कोई संदेह नहीं किया जा सकता है पर, शिष्यों की असीमित संख्या होने पर समय और परिस्थितियाँ व्यक्तिगत ध्यान देने में बाधक हो सकती हैं।

सन्त कबीर के साधन सम्बन्धी

शबद

कर नैनों दीदार महल में प्यारा है ।।टेक।।

काम क्रोध मद लोभ बिसारो, शील सँतोष क्षमा सत धारो ।
मद मांस मिथ्या तजि डारो, हो ज्ञान घोड़ै असवार, भरम से न्यारा है ।।1।।

धोती नेती बस्ती पाओ, आसन पदम जुगतसे लाओ ।
कुम्भक कर रेचक करवाओ, पहिले मूल सुधार कारज हो सारा है ।।2।।

मूल कँवल दल चतूर बखानो, किलियम जाप लाल रंग मानो ।
देव गनेश तहँ रोपा थानो, रिद्धि सिद्धि चँवर ढुलारा है ।।3।।

स्वाद चक्र षटदल विस्तारो, ब्रह्म सावित्री रूप निहारो।
उलटि नागिनी का सिर मारो, तहाँ शब्द ओंकारा है ।।4।।

नाभी अष्ट कमल दल साजा, सेत सिंहासन बिष्णु बिराजा ।
हरियम् जाप तासु मुख गाजा, लछमी शिव आधारा है ।।5।।

द्वादश कमल हृदयेके माहीं, जंग गौर शिव ध्यान लगाई।
सोहं शब्द तहाँ धुन छाई, गन करै जैजैकारा है ।।6।।

षोड्श कमल कंठ के माहीं, तेही मध बसे अविद्या बाई।
हरि हर ब्रह्म चँवर ढुराई, जहँ श्रीयम् नाम उचारा है ।।7।।

तापर कंज कमल है भाई, बग भौंरा दुइ रूप लखाई।
निज मन करत वहाँ ठकुराई, सो नैनन पिछवारा है ।।8।।

कमलन भेद किया निर्वारा, यह सब रचना पिंड मँझारा।
सतसँग कर सतगुरु शिर धारा, वह सतनाम उचारा है ।।9।।

आँख कान मुख बन्द कराओ, अनहद झिंगा शब्द सुनाओ।
दोनों तिल इक तार मिलाओ, तब देखो गुलजारा है ।।10।।

चंद सूर एक घर लाओ, सुषमन सेती ध्यान लगाओ।
तिरबेनीके संधि समाओ, भौर उतर चल पारा है ।।11।।

घंटा शंख सुनो धुन दोई, सहस्र कमल दल जगमग होई।
ता मध करता निरखो सोई, बंकनाल धस पारा है ।।12।।

डाकिनी शाकनी बहु किलकारे, जम किंकर धर्म दूत हकारे।
सत्तनाम सुन भागे सारें, जब सतगुरु नाम उचारा है ।।13।।

गगन मँडल बिच उर्धमुख कुइया, गुरुमुख साधू भर भर पीया।
निगुरो प्यास मरे बिन कीया, जाके हिये अँधियारा है ।।14।।

त्रिकुटी महलमें विद्या सारा, धनहर गरजे बजे नगारा।
लाल बरन सूरज उजियारा, चतूर दलकमल मंझार शब्द ओंकारा है ।।15।।

साध सोई जिन यह गढ लीनहा, नौ दरवाजे परगट चीन्हा।
दसवाँ खोल जाय जिन दीन्हा, जहाँ कुलुफ रहा मारा है ।।16।।

आगे सेत सुन्न है भाई, मानसरोवर पैठि अन्हाई।

हंसन मिलि हंसा होई जाई, मिलै जो अमी अहारा है ।।17।।

किंगरी सारंग बजै सितारा, क्षर ब्रह्म सुन्न दरबारा।
द्वादस भानु हंस उँजियारा, षट दल कमल मँझार शब्द ररंकारा है ।।18।।

महा सुन्न सिंध बिषमी घाटी, बिन सतगुरु पावै नहिं बाटी।
व्याघर सिहं सरप बहु काटी, तहँ सहज अचिंत पसारा है ।।19।।

अष्ट दल कमल पारब्रह्म भाई, दहिने द्वादश अंचित रहाई।
बायें दस दल सहज समाई, यो कमलन निरवारा है ।।20।।

पाँच ब्रह्म पांचों अँड बीनो, पाँच ब्रह्म निःअच्छर चीन्हों।
चार मुकाम गुप्त तहँ कीन्हो, जा मध बंदीवान पुरुष दरबारा है ।।21।।

दो पर्वतके संध निहारो, भँवर गुफा तहां संत पुकारो।
हंसा करते केल अपारो, तहाँ गुरन दर्बारा है ।।22।।

सहस अठासी दीप रचाये, हीरे पन्ने महल जड़ाये।
मुरली बजत अखंड सदा ये, तँह सोहं झनकारा है ।।23।।

सोहं हद तजी जब भाई, सत्तलोककी हद पुनि आई।
उठत सुगंध महा अधिकाई, जाको वार न पारा है ।।24।।

षोडस भानु हंसको रूपा, बीना सत धुन बजै अनूपा।
हंसा करत चँवर शिर भूपा, सत्त पुरुष दर्बारा है ।।25।।

कोटिन भानु उदय जो होई, एते ही पुनि चंद्र लखोई।
पुरुष रोम सम एक न होई, ऐसा पुरुष दिदारा है ।।26।।

आगे अलख लोक है भाई, अलख पुरुषकी तहँ ठकुराई।
अरबन सूर रोम सम नाहीं, ऐसा अलख निहारा है ।।27।।

ता पर अगम महल इक साजा, अगम पुरुष ताहिको राजा।
खरबन सूर रोम इक लाजा, ऐसा अगम अपारा है ।।28।।

ता पर अकह लोक है भाई, पुरुष अनामि तहां रहाई।
जो पहुँचा जानेगा वाही, कहन सुनन ते न्यारा है ।।29।।

काया भेद किया निरुवारा, यह सब रचना पिंड मँझारा।
माया अविगत जाल पसारा, सो कारीगर भारा है ।।30।।

आदि माया कीन्ही चतूराई, झूठी बाजी पिंड दिखाई।
अवगति रचना रची अँड माहीं, ताका प्रतिबिंब डारा है ।।31।।

शब्द बिहंगम चाल हमारी, कहैं कबीर सतगुरु दई तारी।
खुले कपाट शब्द झनकारी, पिंड अंड के पार सो देश हमारा है ।।32।।

लेखक की अन्य दो पुस्तकें अँग्रेज़ी भाषा में है जिनका विवरण अँग्रेज़ी भाषा में ही निम्नलिखित है।

THE SECRET OF REALISATION

The technique of the Saints as to how they raise the soul from the low gross levels to the highest levels of consciousness and liberate the poor soul from the bondage of the intricate net of maya, get him a glimpse of the reality and ultimately arrange his permanent merger in the ocean of immortal eternal peace, tranquility and bliss.

SANT MAT DARSHAN

Written by Param Sant Satguru Mahatma
Sri Ramchandraji of Fatehgarh
Translated into English by
Dr. H. N. Saksena

What is Misery and how can it be avoided? What is Pleasure and how can it be obtained IN THIS VERY LIFE.

You can read these books on line at:

http://www.harnarayan-saxena.com/books--video-and-audio.html